श्री श्री भागवत-पत्रिका

वर्ष—१७ राष्ट्रभाषा हिन्दीमें श्रीश्रीरूप-रघुनाथकी वाणीकी एकमात्र वाहिका संख्या—१-४

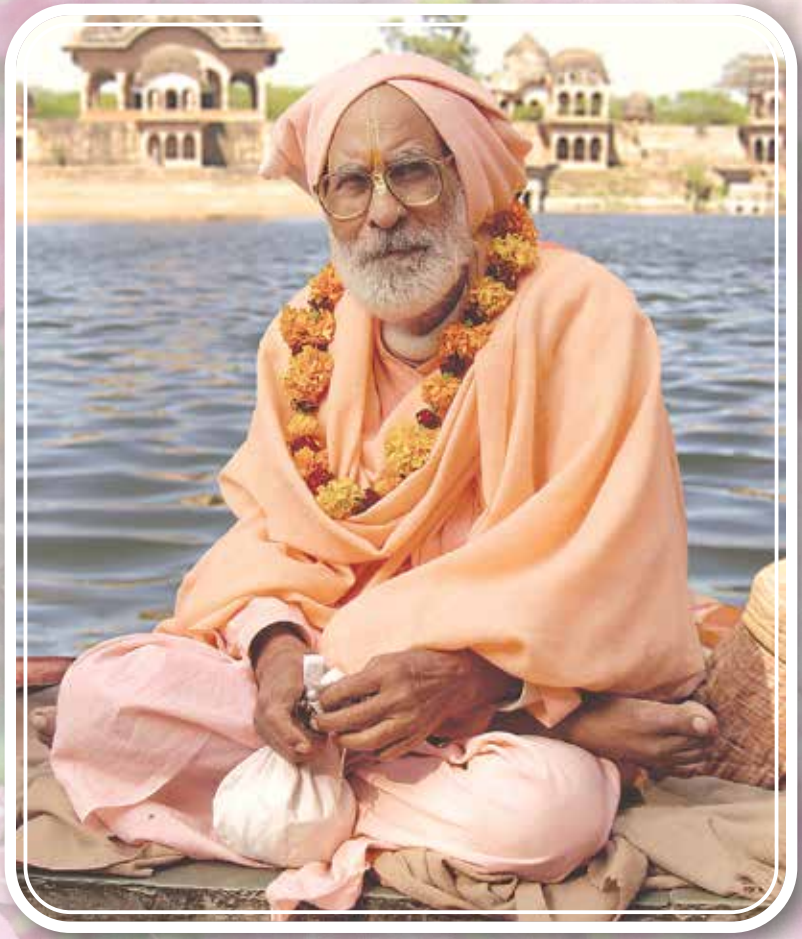

श्रील गुरुदेवकी आविर्भाव-शतवार्षिकी

श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजकी विरह-स्मृति

• स्तवमाला • गुरुवर्गका वाणी-वैभव • श्रील गुरुदेवके वचनामृत

संस्थापक एवं नियामक

नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंस ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके

अनुगृहीत

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

प्रेरणा-स्रोत
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

सम्पादक—श्रीमाधवप्रिय दास ब्रह्मचारी, श्रीअमलकृष्ण दास ब्रह्मचारी

प्रचार सम्पादक संघ—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वन महाराज
श्रीपाद रामचन्द्र दासाधिकारी
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त सिद्धान्ती महाराज
श्रीयुक्ता उमा दासी, श्रीयुक्ता सुचित्रा दासी
श्रीविजयकृष्ण दास ब्रह्मचारी

सहकारी सम्पादक संघ—डॉ. श्रीअच्युतलाल भट्ट, एम. ए., पी-एच. डी.
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारसिंह महाराज
डॉ. (श्रीमती) मधु खण्डेलवाल, एम. ए., पी-एच. डी.
श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी 'सेवानिकेतन'

कार्याध्यक्ष—श्रीमद् प्रेमानन्द दास ब्रह्मचारी 'सेवारत्न'

कार्यकारी मण्डल—श्रीगोकुलचन्द्र दास, श्रीप्रेमदास, श्रीसुबलसखा दास
श्रीसञ्जय दास,

ले-आउट, फोटो एवं डिजाइन—श्रीकृष्णकारुण्य दास ब्रह्मचारी

कार्यकारी सहायक—मधुकर दास, गौरराज दास, कृष्णदास,
माधव दास, हृदयचैतन्य दास, राधारमण दास,
शचीनन्दन दास, निताई दास

आभार—सुबलसखा दास, दामोदर दास, शारदा दासी, प्रभावती दासी
सुशील कृष्ण दास, सत्यकृष्ण दास, दामोदर दास

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा-२८१००१(उ. प्र.)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्टकी ओरसे
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज द्वारा
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरासे प्रकाशित।

www.purebhakti.com www.harikatha.com
bhagavata.patrika@gmail.com

॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

वर्ष ❀ १७

श्रीगौराब्द – ५३४
वि. सं. – २०७७; विष्णु-भाद्र मास ; सन् – २०२० (१० मार्च – २ सितम्बर)

संख्या ❀ १-४

विषय-सूची

'स्तव-वैभव'

श्रीजगन्नाथाष्टकम् २
श्रीगौरचन्द्र मुखकमल-निःसृत

गुरुवर्गका वाणी-वैभव

सहनशीलता और श्रीभक्तिविनोद ५
अमानित्व और श्रीभक्तिविनोद....................... ६
मानदत्व और श्रीभक्तिविनोद......................... ७
—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीगुरुतत्त्व और श्रील प्रभुपाद ८
—श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद'

श्रीमन्महाप्रभुकी कथाओंका प्रचार ही वास्तव वदान्यता तथा जीवोंके प्रति दया है १२
—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

श्रीगौड़ीय-पत्रिकाका सत्ताईसवाँ वर्ष............... १४
—श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

श्रील गुरुदेवके वचनामृत

हमारा एक परम-बान्धव अवश्य होना चाहिए १७
हरिकथाके श्रवणमात्रसे ही भक्तिराज्यमें सबकुछ प्राप्त होगा..... १९
तुम्हारा जीवन भार न होकर सर्वप्रकारसे सुखमय एवं सार्थक हो... २४
—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

श्रील गुरुदेवकी आविर्भाव-शतवार्षिकीके उपलक्ष्यपर सारस्वत-गौड़ीय-वैष्णव एवं चरणाश्रितजन प्रदत्त पुष्पाञ्जलि

—श्रीमद्भक्तिवैभव सागर महाराज......................................२८
—श्रीमद्भक्तिप्रणत मुनि महाराज...३३
—श्रीपाद नवीनकृष्ण प्रभु...३५
—श्रीपाद भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज ३७
—श्रीपाद भक्तिवेदान्त विष्णु महाराज..................................४१
—श्रीयुक्ता मालती दासी ४५
—श्रील गुरुदेव-स्मरण-मङ्गल-कणिकाएँ ४८

वैष्णव-विरह-संवाद

—श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजका प्रयाण ५१
—श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजके जीवनचरित्र एवं गुण-महिमाका किञ्चित् स्मरण..५४
—श्रीपाद कृष्णदास प्रभुकी स्मृतिमें ७४

श्रीजगन्नाथाष्टकम्

(श्रीगौरचन्द्र मुखकमल-निःसृत)

कदाचित् कालिन्दीतट-विपिन-सङ्गीत-तरलो
मुदाभीरीनारी-वदनकमलास्वाद-मधुपः ।
रमा-शम्भु-ब्रह्मामरपति-गणेशार्चितपदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥१॥

जो कभी-कभी यमुनातीर स्थित श्रीवृन्दावनमें सङ्गीतसे लुब्धचित्त होते हैं, जो आनन्दपूर्वक व्रजगोपियोंके मुखकमलका आस्वादन करनेवाले भ्रमरस्वरूप हैं तथा लक्ष्मी-शिव-ब्रह्मा-इन्द्र एवं गणेश आदि देवी-देवताओंके द्वारा जिनके श्रीचरणकमल पूजित होते रहते हैं, वे ही श्रीजगन्नाथ स्वामी मेरे नयनपथके पथिक बन जाएँ॥१॥

भुजे सव्ये वेणुं शिरसि शिखिपिच्छं कटितटे
दुकूलं नेत्रान्ते सहचरि-कटाक्षं विदधते।
सदा श्रीमद्वृन्दावन-वसति-लीलापरिचयो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥२॥

जो बायें हाथमें वेणु, सिरपर मोरपँख, कटितटमें पीताम्बर एवं अपने नेत्रप्रान्तमें सहचरियोंके प्रति कटाक्ष धारणकर सर्वदा ही श्रीवृन्दावनमें वास एवं लीला करते हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नयनपथके पथिक बन जाएँ ॥२॥

महाम्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे
वसन् प्रासादान्तः सहज-वलभद्रेण बलिना।
सुभद्रा-मध्यस्थः सकल-सुर-सेवावसरदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥३॥

जो महासमुद्रके तीरपर सुवर्णके समान सुन्दर नीलाचलके शिखरमें अपने भवन [मन्दिर] में बड़े भाई प्रबल बलदेवजीके साथ सुभद्राको बीचमें रखकर अवस्थान करते हुए समस्त देवताओंको अपनी सेवाका अवसर प्रदान करते हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नयनपथके पथिक बन जाएँ॥३॥

कृपा-पारावारः सजल-जलद-श्रेणि-रुचिरो
रामवाणीरामः स्फुरदमल-पंकेरुहमुखः।
सुरेन्द्रैराराध्यः श्रुतिगणशिखा-गीतचरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥४॥

जो करुणाके सगार हैं, जिनकी अङ्गकान्ति जलसे परिपूर्ण मेघश्रेणीके समान श्यामसुन्दर है, जो रमा तथा सरस्वतीदेवीके साथ विहार करनेवाले हैं, जिनका श्रीमुख विकसित निर्मल कमलके समान शोभायमान है, जो समस्त देवेन्द्रोंके आराध्य धन हैं तथा जिनका दिव्यचरित्र श्रुतियोंके शिरोभाग [वेद, पुराण, तन्त्रादि] गान कर रहे हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नयनपथके पथिक बन जाएँ ॥४॥

रथारूढो गच्छन् पथि मिलित-भूदेव पटलैः
स्तुति प्रादुर्भावं प्रतिपदमुपाकर्ण्य सदयः।
दयासिन्धुर्बन्धुः सकलजगतां सिन्धुसुतया
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥५॥

रथमें विराजित होकर गमन करते समय मार्गमें मिलनेवाले ब्राह्मणोंके द्वारा पग-पगपर की जानेवाली अपनी स्तुतियोंको सुनकर जो उनके प्रति दयासे युक्त हो जाते हैं, अतएव जो दयाके सिन्धु एवं समस्त जगत्के बन्धु हैं, समुद्र-कन्या लक्ष्मीदेवी सहित वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नयनपथके पथिक बन जाएँ ॥५॥

परंब्रह्मापीडः कुवलय-दलोत्फुल्ल-नयनो
निवासी नीलाद्रौ निहित-चरणोऽनन्त-शिरसि।
रसानन्दी राधा-सरस-वपुरालिङ्गन-सुखो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥६॥

जो आराध्य-मुकुटमणिस्वरूप परब्रह्म हैं, जिनके दोनों नेत्र नील-कमल-दलके समान खिले हुए हैं, जो नीलाचलमें निवास करनेवाले हैं, जो शेषजीके सिरपर अपने चरणोंको स्थापित किए हुए हैं, जो प्रेमरसमें ही आनन्दमग्न होकर श्रीराधिकाके सरस-देहके आलिङ्गन-सुखमें ही सुख अनुभव करते हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नयनपथके पथिक बन जाएँ ॥६॥

न वै याचे राज्यं न च कनक-माणिक्य-विभवं
न याचेऽहं रम्यां सकल-जन-काम्यां वरवधूम्।
सदा काले काले प्रमथपतिना गीतचरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥७॥

मैं प्रसन्न हुए श्रीजगन्नाथदेवसे राज्य नहीं चाहता, सुवर्ण-मणि-माणिक्यरूप वैभवको भी नहीं चाहता तथा सभीके द्वारा वाँछनीय सुन्दरी नारीको भी नहीं चाहता हूँ, किन्तु यही मात्र चाहता हूँ कि प्रमथनाथ महादेव सर्वदा जिनके चारुचरित्रका गान करते रहते हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नयनपथके पथिक बन जाएँ ॥७॥

हर त्वं संसारं द्रुततरमसारं सुरपते!
हर त्वं पापानां विततिमपरां यादवपते।
अहो दीनेऽनाथे निहित-चरणो निश्चितमिदं
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥८॥

हे सुरपते! आप मेरे असार-संसारको शीघ्र ही हर लो। हे यादवपते! आप मेरे दुःसहनीय पापोंकी श्रेणीको हर लो। अहो! जो दीन एवं अनाथके ऊपर ही अपने श्रीचरणोंको स्थापित करते हैं तथा यही जिनका निश्चित व्रत है, ऐसे श्रीजगन्नाथदेव मेरे नयनपथके पथिक बन जाएँ ॥८॥

जगन्नाथाष्टकं पुण्यं यः पठेत् प्रयतः शुचि।
सर्वपाप-विशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ॥९॥

जो व्यक्ति पवित्र एवं सावधान होकर पुण्यमय श्रीजगन्नाथाष्टकका पाठ करता है, वह व्यक्ति समस्त पापोंसे रहित विशुद्ध चित्तवाला होकर विष्णुलोकको गमन करता है ॥९॥

सहनशीलता और श्रीभक्तिविनोद

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका वाणी-वैभव

(वर्ष-१६, संख्या-११-१२से आगे)

प्रश्न १—कृष्णकी प्रसन्नताके लिए सहनशील व्यक्तिका क्या कर्तव्य है?

उत्तर—"यदि कोई तुम्हारा अपमान करता है, तो तुम उसे सहन करना, किसीका अपमान मत करना। इस देहका आश्रयकर किसीका भी बुरा नहीं करना। [प्राकृत] काम कलिका स्थान है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। कृष्णसेवाका काम—अप्राकृत है, उसीका नाम है—प्रेम। इन्द्रियसेवाका काम—प्राकृत है, उसमें ही कलिका स्थान है। उसे अवश्य ही त्यागना चाहिए।"

(कलि, ससङ्गिनी (क्षेत्रवासिनी) सज्जन-तोषणी १५/२)

प्रश्न २—[स्वभजन प्रणालीसे] भिन्न प्रणालीके प्रति असहनशील होना क्या अपने धर्मके प्रति अनुरागका लक्षण है?

उत्तर—"जो भिन्न प्रणालीके प्रति द्वेष, हिंसा, असूया या उसकी निन्दा करते हैं, वे नितान्त असार तथा हतबुद्धि हैं। उनका अपने चरम प्रयोजनके प्रति उतना लगाव नहीं है, जितना वे व्यर्थ विवादका आदर करते हैं।"

(चैतन्य-शिक्षामृत १/१)

प्रश्न ३—क्या कामनायुक्त भक्ति करनेवाला व्यक्ति सहनशील हो सकता है?

उत्तर—"जिनकी कामनायुक्त भक्ति है, वे क्रोधको जय नहीं कर सकते। केवल विवेकके द्वारा क्रोधको जय नहीं किया जा सकता। विषयोंके प्रति आसक्ति कुछ ही क्षणमें विवेकको निष्क्रियकर अपने राज्यमें क्रोधको स्थान प्रदान करती है।"

(धैर्य, सज्जन-तोषणी ११/५)

प्रश्न ४—नाम-कीर्तन करनेवालेकी सहनशीलता कैसी होगी?

उत्तर— "वृक्षसम क्षमागुण करबि साधन।
प्रतिहिंसा त्यजि अन्ये करिब पालन।"

अर्थात् नाम-कीर्तन करनेवाला व्यक्ति अपनेमें वृक्षके समान क्षमागुण [सहनशीलता] का विकास करेगा तथा प्रतिहिंसाका त्यागकर दूसरोंका [पारमार्थिक रूपसे] पालन करेगा।

(शिक्षाष्टक ३, गीतावली)

प्रश्न ५—'वृक्षसे भी अधिक सहनशील' शब्दसे किस प्रकारकी दया सूचित होती है?

उत्तर—'तरोरपि सहिष्णुना'—इस वाक्यका तात्पर्य है कि वृक्ष इतने सहनशील होते हैं कि वे अपनेको काटनेवाले व्यक्तिको भी सुशीतल छाया एवं समधुर फल प्रदानकर उसका उपकार करना नहीं भूलते। किन्तु कृष्णभक्त तो वृक्षसे भी अधिक सहनशील होनेके कारण शत्रु-मित्र सबका ही उपकार ही करते हैं। यह 'निर्मत्सरता युक्त दया' हरिनाम-कीर्तनकारी साधु-पुरुषोंका द्वितीय लक्षण है।"

(श्रीशिक्षाष्टक-३, सन्मोदन भाष्य)

प्रश्न ६—क्या धैर्यहीन व्यक्तिका हरिभजन हो सकता है?

उत्तर—"भजनशील व्यक्तिके लिए धैर्यकी अति आवश्यकता है। जिसमें धैर्यगुण है, वही धीर है। धैर्यगुणके अभावमें मानव चञ्चल हो उठता है। जो अधीर होते हैं, वे कोई भी कार्य नहीं कर सकते। धैर्यगुणके द्वारा साधक स्वयं अपनेको वशमें रखकर अन्तमें समस्त जगत्को वशमें कर लेता है।"

(धैर्य, सज्जन-तोषणी ११/५)

अमानित्व और श्रीभक्तिविनोद

प्रश्न १—अमानी कैसे हुआ जा सकता है?

उत्तर—"मैं ब्राह्मण हूँ, मैं सम्पन्न हूँ, मैं शास्त्रोंको जाननेवाला हूँ, मैं वैष्णव हूँ, मैं गृहत्यागी हूँ—ऐसा अभिमान मत करना। ऐसी अवस्थाओंमें जो सम्मान प्राप्त होता है, उसको लोग करते रहें, मैं ऐसे अभिमानसे दूसरोंसे पूजाकी आशा नहीं करूँगा—मैं अपनेको दीन, हीन, अकिञ्चन तथा तृणसे भी अधिक सुनीच मानूँगा।"

(जैवधर्म ८ वाँ अः)

प्रश्न २—कृष्ण-कीर्तनकारीको कैसा दीन होना चाहिए?

उत्तर—"तृणाधिक हीन, दीन, अकिञ्चन छार।
आपने मानिब सदा छाड़ि अहङ्कार॥

अर्थात् कृष्णकीर्तनकारी समस्त प्रकारके अहङ्कारको त्यागकर अपनेको तिनकेसे भी अधिक दीन, हीन, अकिञ्चन और तुच्छ मानेगा।"

(शिक्षाष्टक-३ गीतावली)

प्रश्न ३—किस प्रकारसे अपनेको अमानी बनाया जा सकता है?

उत्तर—"स्वयंको दीन जानकर सभीको यथायोग्य सम्मान देकर अपनेको अमानी बनाना चाहिए।"

(श्रीमहाप्रभु शिक्षा १० पः)

प्रश्न ४—देहधारी मनुष्य अपनेको कैसा मानेगा?

उत्तर—"मानवदेह—केवल कारागार मात्र है। इसके साथ आत्माका अनित्य सम्बन्ध है। अतः जबतक इस शरीरमें रहा जाय, तबतक मानवको अपनेको तृणसे भी अधिक नीच जानना चाहिए।"

(तत्त्वसूत्र २३ सूः)

प्रश्न ५—क्या विरूपग्रस्त व्यक्तिके लिए तृणसे भी अधिक हीन होना सङ्गत नहीं है?

उत्तर—"तृण यद्यपि जड़वस्तु है, तथापि उसका वस्तुगत अभिमान(अहङ्कार) न्याय-सङ्गत ही है। किन्तु मेरा वर्तमान स्थूल-सूक्ष्म शरीरगत अभिमान(अहङ्कार) शुद्ध-स्वरूपसम्बन्धी नहीं होनेके कारण वस्तुतः उचित नहीं है। तृणका अभिमान वास्तविक है, किन्तु मेरा

जड़ाभिमान अवास्तविक है। अतः मेरे लिए तृणसे भी सुनीच होना यथार्थ ही है।"

(शिक्षाष्टक-३ सन्मोदन भाष्य)

प्रश्न ६—'अमानी' शब्दका तात्पर्य क्या है?

उत्तर—"अमानी शब्दसे कीर्तनकारी साधकोंके मिथ्याभिमान-शून्यतारूप तृतीय लक्षणको सूचित किया गया है। मायाबद्ध जीवोंके स्थूल एवं सूक्ष्म—दोनों देहोंसे सम्बन्धित योगैश्वर्य, भोगैश्वर्य, धन-वैभव, जाति, वर्ण, बल, प्रतिष्ठा और अधिकार इत्यादिसे उत्पन्न होनेवाले जितने भी अभिमान हैं, वे सभी अभिमान जीवस्वरूपके विरोधी एवं मिथ्या हैं। इन मिथ्या अहङ्कारोंसे रहित होना ही 'मिथ्याभिमान-शून्यता' है। इस प्रकार उन अहङ्कारोंके रहनेका हेतु विद्यमान रहनेपर भी मिथ्याभिमान-शून्यता और सहनशीलतारूपी गुणोंसे विभूषित व्यक्ति ही श्रीहरिकीर्तन करनेके योग्यतम अधिकारी हैं। ऐसे शुद्ध साधकभक्त गृहस्थाश्रममें ब्राह्मण आदिका अभिमान तथा त्यागी होनेपर संन्यासी और वैरागी होनेका अहङ्कार—इन सबका सर्वथा परित्याग करके श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें ही अनन्यरूपसे चित्तको लगाकर श्रीकृष्णका नाम-सङ्कीर्तन करते हैं।"

(शिक्षाष्टक-३ सन्मोदन भाष्य)

मानदत्व और श्रीभक्तिविनोद

प्रश्न १—'मानद' शब्दका अर्थ क्या है?

उत्तर—"मानद शब्दके द्वारा सभीको यथायोग्य मान देना ही सङ्कीर्तनकारी भक्तिसाधकोंके चतुर्थ लक्षणको सूचित करता है। वे सभी जीवोंको कृष्णदास जानकर किसीसे भी द्वेष या किसीके प्रति प्रतिहिंसाकी भावना नहीं रखते। वे अपने मधुर वचनोंसे एवं जगत्-मङ्गलकारी आचरणोंसे सभीको सन्तुष्ट रखते हैं।"

(शिक्षाष्टक-३ सन्मोदन भाष्य)

प्रश्न २—यथायोग्य सम्मान देनेसे क्या समझा जाता है?

उत्तर—"वैष्णवोंका ही सम्मान होना चाहिए। यदि वैष्णव-सन्तान शुद्ध-वैष्णव हों, तो उनकी भक्तिके तारतम्यसे ही उनके सम्मानका तारतम्य होगा। यदि वैष्णव-सन्तान केवल व्यवहारिक मनुष्य हों, तो उनकी गणना व्यवहारिक मनुष्योंमें ही करनी चाहिए, उनकी गणना वैष्णवोंमें नहीं करनी चाहिए तथा उनका वैष्णवके रूपमे सम्मान नहीं करना चाहिए। जो वैष्णव हैं, उनका वैष्णवोचित सम्मान करना चाहिए। जो वैष्णव नहीं हैं, उनका मानवोचित सम्मान करना चाहिए। दूसरोंके प्रति मान देनेवाला नहीं होनेपर हरिनाममें अधिकार प्राप्त नहीं होता।"

(जैवधर्म ८ वाँ अः)

प्रश्न ३—अपनेको गुरु मानना क्या मानदधर्मके विरुद्ध नहीं है?

उत्तर—**"निजे श्रेष्ठ जानि, उच्छिष्टादि दाने,**
ह'बे अभिमान भार।
ताइ शिष्य तब, थाकिया सर्वदा,
ना लइब पूजा कार॥

अर्थात् अपनेको श्रेष्ठ मानकर दूसरोंको अपना उच्छिष्ट प्रदान करनेपर अभिमान बढ़ जाता है। इसलिए मैं सर्वदा आपका शिष्य बनकर रहूँगा और कभी किसीसे पूजा ग्रहण नहीं करूँगा।"

(प्रार्थना, लालसामयी ८, कल्याण कल्पतरु)

('श्रीभक्तिविनोद-वाणी-वैभव' नामक ग्रन्थसे अनुदित)

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर
'प्रभुपाद' का वाणी-वैभव

श्रीगुरुतत्त्व

प्रश्न १—गुरु कौन हैं?

उत्तर—गुरु एवं वैष्णव अप्राकृत श्रीमन्दिर हैं। भगवान् जहाँ-तहाँपर प्रकाशित नहीं होते। वे गुरु एवं वैष्णवोंके हृदयमें ही अपनेको प्रकाशित करते हैं। अनेक लोग भगवान्‌का दर्शन करना चाहते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते कि गुरुके दर्शनसे ही भगवान्‌का दर्शन होता है। यदि श्रीगुरुपादपद्म न हों तो भक्ति प्रारम्भ ही नहीं होगी। गुरु ही कृष्णके श्रीचरणकमलोंके दर्शनमें योगसूत्र हैं। कृष्ण अपने सबसे श्रेष्ठ-सेवक या श्रेष्ठ-वैष्णवको इस जगत्‌में भेजकर जिस अपार करुणाका परिचय देते हैं, उस करुणाशक्तिके मूर्त्तविग्रह ही श्रीगुरुपादपद्म(श्रीगुरुदेव) हैं।

जो संसाररूप मृत्युसे मेरी रक्षा करते हैं, वे ही श्रीगुरुपादपद्म हैं। 'मैं मर जाऊँगा'—इस भयसे, इस आशङ्कासे जो मेरा उद्धार कर सकते हैं, वे ही सद्गुरु हैं। जिनके समीप उपस्थित होनेसे दूसरे किसीकी कथा (विचार) सुननेकी आवश्यकता नहीं होती है—दूसरे किसीके निकट जाना नहीं होता, वे ही गुरुदेव हैं। समस्त मङ्गलोंके मङ्गल-स्वरूप भगवान्‌ने मेरे सभी मङ्गलोंका भार जिनके हाथोंमें अर्पण किया है, वे ही समस्त कल्याणोंके मूल श्रीगुरुपादपद्म हैं।

जिनकी कृपासे कर्त्तापनका अभिमान दूर होता है, वे ही श्रीगुरुपादपद्म हैं। जो हमारे कानोंमें श्रौतवाणी प्रदान करते हैं, जो निरन्तर हमारे कानोंमें श्रौतवाणीका अभिषेक करके हमको तृणसे भी सुनीच, वृक्षकी भाँति सहिष्णु, अमानी-मानद बनानेका प्रयास कर रहे हैं एवं सर्वदा हमारे मुखमें वैकुण्ठ-कीर्त्तन स्फुरित करनेके लिये शक्ति सञ्चार कर रहे हैं, वे कृष्णशक्ति ही श्रीगुरुपादपद्म हैं। श्रीगुरुपादपद्म ही हमें मायाशक्तिके चंगुलसे मुक्त कर सकते हैं।

समस्त जगत्‌वासी हमारे मान्य या नमस्य हैं, समस्त जगत् गुरुसेवाका उपकरण है, सभी हमारे सेव्य या गुरु हैं, मैं कृष्णसेवक हूँ, कृष्णसेवा ही मेरा धर्म है—यह दिव्यज्ञान जो प्रदान करते हैं, वे ही श्रीगुरुपादपद्म हैं।

गुरुदेव भगवान् होनेपर भी भगवान्‌के प्रियतम हैं। हमारे लिए श्रीकृष्णकी अपेक्षा श्रीगुरुदेवकी अधिक प्रयोजनीयता है। श्रीगौरसुन्दर समस्त गुरुओंके भी गुरु हैं। उन्होंने बताया कि गुरु भगवान्‌से अभिन्न होनेपर भी भगवद्भक्तोंके प्रधानतत्त्वके रूपमें गुरुतत्त्वका अवस्थान है। श्रीगुरुदेव कृष्णके प्रेष्ठ तथा वैष्णवोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। वे भक्तराज, सेवक-भगवान्, सेवाविग्रह, आश्रयविग्रह हैं। वे कृष्णकी भाँति विषय-विग्रह या भोक्ता-तत्त्व नहीं हैं।

प्रश्न २—कौनसे गुरु संसार-बंधनसे हमारी हमारी रक्षा कर सकते हैं?

उत्तर—श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रियजन श्रीगुरुदेव ही संसाररूप मृत्युसे हमारी रक्षा कर सकते हैं। गुरु कौन हैं? इस विषयपर हमें विचार करना चाहिए। जो समस्त गुरुओंके एकमात्र आराध्य हैं, ऐसे

और श्रील प्रभुपाद

पूर्णवस्तु भगवान्‌की सेवामें जो नियुक्त हैं, वे ही गुरु हैं। वैसे तो गुरु बहुत होते हैं। जैसे—कुश्ती सिखानेवाले, तैराकी सिखानेवाले, खेल सिखानेवाले या स्कूल-कालेजोंमें जागतिक शिक्षा देनेवाले। परन्तु इनमेंसे एक भी गुरु ऐसा नहीं है, जो हमें मृत्युसे बचा सके, अर्थात् इस दुःखमय संसारमें हमारे आवागमनको रोक सकें, क्योंकि वे तो स्वयं ही अपनेको बचानेमें असमर्थ हैं। अतः यहाँपर ऐसे गुरुओंकी बात नहीं कही गयी है। श्रीमद्भागवतमें भी कहा गया है—वह गुरु, गुरु नहीं है; वे मातापिता, मातापिता नहीं हैं; वह देवता, देवता नहीं है; वे बन्धु-बान्धव, बन्धु-बान्धव नहीं हैं—जो हमें भक्तिका उपदेश प्रदानकर हमारी मृत्यु अर्थात् संसारमें हमारे आवागमनको न रोक सके, इस जड़जगत्‌के प्रति आवेशरूपी मृत्युसे हमारी रक्षा न कर सकें।

अज्ञानके कारण अर्थात् भगवान्‌को भूलनेके कारण ही हमें मृत्युके मुखमें जाना पड़ता है—जन्म-मरणके चक्करमें पड़ना पड़ता है। ज्ञान होनेपर सहजरूपमें ही हम मृत्युके मुखमें जानेसे बच सकते हैं। इस संसारमें हम जो विद्या ग्रहण करते हैं, यदि किसी कारणसे हम पागल हो जाएँ, हमें पक्षाघात (लकवा) हो जाए या हमारी मृत्यु हो जाए, तो उस समय इस विद्याका कुछ भी मूल्य नहीं रहता। जो गुरु हमें मृत्युके मुखसे बचा नहीं सकते, वे कुछ दिन तो हमारे लिए विषय-भोगोंकी व्यवस्था कर देते हैं, अर्थात् हमें ऐसी शिक्षा प्रदान करते हैं जिसके द्वारा हम नाशवान शारीरिक सुखकी वस्तुओंको एकत्र कर लेते हैं, परन्तु वे हमें इस संसारके प्रति आसक्तिरूप मृत्युसे बचा नहीं पाते। अतः ऐसे सब गुरु वञ्चक हैं।

प्रश्न ३—गुरु कहाँ मिलेंगे?

उत्तर—कृष्ण अत्यन्त करुणामय हैं। अतः करुणापूर्वक वे जिनको तुम्हारे गुरुके रूपमें भेजेंगे, वे ही महान्तगुरु (दीक्षागुरु)के रूपमें तुम्हारे सामने प्रकाशित होंगे। भगवान्‌की कृपासे गुरु मिलते हैं तथा गुरुकी कृपासे भगवान् मिलते हैं। अपने-अपने भाग्यके अनुसार ही गुरु मिलते हैं। भगवान् सर्वज्ञ हैं, अतः वे विभिन्न लोगोंकी विभिन्न चित्तवृत्तियोंके अनुसार ही गुरुको भेजते हैं। जो भगवान्‌की निष्कपट कृपा चाहते हैं, अर्थात् जो केवल भगवान्‌की सेवा चाहते हैं तथा अपने आत्मकल्याणके लिए पूर्णरूपसे भगवान्‌के ऊपर निर्भर हैं, ऐसे सरल तथा निष्कपट व्यक्तिपर प्रसन्न होकर उसपर कृपा करनेके लिए भगवान् स्वयं ही गुरुके रूपमें प्रकट होते हैं। शास्त्रोंमें जहाँपर भी गुरुको भगवान्‌का स्वरूप बताया गया है, वहाँपर ऐसे गुरुको ही समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त जो भगवान्‌की सेवा नहीं चाहते, बल्कि सांसारिक वस्तुएँ या भुक्ति एवं मुक्ति चाहते हैं, ऐसे कपटी लोगोंकी चित्तवृत्तिके अनुसार भगवान्‌की माया ही उनके निकट कपटी गुरुको भेज देती हैं।

प्रश्न ४—क्या श्रीगुरुदेव मनुष्य हैं?

उत्तर—कदापि नहीं। श्रीगुरुदेव क्षणभङ्गुर रक्त एवं मांसका एक पिण्डमात्र नहीं हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—श्रीगुरुदेव भगवान् ही हैं, अर्थात् भगवान्‌के अवतार (शक्त्यावेशावतार) हैं।

श्रीगुरुदेव कृपापूर्वक स्वयं ही परजगत्‌से इस जगत्‌में आते हैं। प्रकट एवं अप्रकट दोनों ही लीलाओंमें वे नित्य विराजमान हैं। वे सर्वदा ही हमारे नियामकके रूपमें विराजमान रहकर हमें भगवान्‌की सेवाके लिए प्रेरित करते हैं।

सच्चिदानन्द श्रीगुरुदेव अतिमर्त्य महापुरुष हैं। उन्हें एक साधारण मनुष्य माननेपर निश्चितरूपसे नामापराध होता है, जिसके फलस्वरूप नरक गति प्राप्त होती है। वे आत्मविद्-कृष्णतत्त्वविद् हैं अर्थात् वे आत्मतत्त्व एवं कृष्णतत्त्वको जानते हैं। वे श्रीचैतन्यमहाप्रभुके अत्यन्त प्रियजन हैं। हमारे जैसे पतितोंका उद्धार करनेके लिए ही वे अवतीर्ण होते हैं। वे कर्मी, ज्ञानी या योगी नहीं हैं, लीलामय भगवान्‌की लीलाओंके पार्षद या सङ्गी हैं। वे सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं।

देवता जिस प्रकार नित्य हैं, उसी प्रकार श्रीगुरुदेव भी नित्य हैं। देवता शब्दका अर्थ यहाँपर इन्द्र आदि नहीं है, बल्कि अप्राकृत कामदेव—कृष्ण है। श्रीगुरुदेव उन्हीं कृष्णस्वरूप अर्थात् कृष्णसे अभिन्न, कृष्णके प्रकाश-विग्रह हैं।

श्रीगुरुदेव कृष्णसे अभेद विचारसे उपास्यकी पराकाष्ठा हैं। वे भगवान्‌के अतिप्रिय हैं। श्रीगुरुदेव आश्रयजातीय तत्त्व तथा श्रीकृष्ण विषयजातीय तत्त्व हैं। श्रीगुरुदेव सेवक-भगवान् तथा श्रीकृष्ण सेव्य-भगवान् या स्वयं भगवान् हैं। श्रीगुरुदेव मुकुन्दप्रेष्ठ (प्रिय) हैं। रागमार्गसे भजन करनेवाले शिष्यके स्वरूपसिद्ध हो जानेपर उसे श्रीगुरुदेव श्रीकृष्णकी शक्ति या उनसे अभिन्न श्रीवार्षभानवी श्रीमती राधिकाके प्रकाशके रूपमें दिखाई पड़ते हैं।

कृष्णप्रेष्ठ श्रीगुरुदेव स्वरूपशक्ति हैं, किन्तु श्रीकृष्ण शक्तिमान हैं। श्रीकृष्ण पुरुष या भोक्ता हैं तथा श्रीगुरुदेव श्रीकृष्णकी शक्ति या उनकी कान्ता हैं।

प्रश्न ५—गुरुका कार्य कौन कर सकता है?

उत्तर—कृष्णतत्त्वविद् कृष्णभक्त ही गुरु हैं। कर्मी, योगी तथा निर्विशेष ब्रह्मज्ञानी अभक्त होनेके कारण कभी भी गुरु नहीं हो सकते। Personality of Godhead के उपासक ही गुरु हो सकते हैं। परन्तु श्रीकृष्णके सेवक अभिमानी (कृष्णके उपासक) भी गुरु नहीं हो सकते, यदि वे अपनेको अपने शिष्यका शिष्य न मानें। जो स्वयंको वैष्णव मानता है, वह branded अवैष्णव है। जो अपनेको गुरु या श्रेष्ठ मानते हैं, वे गुरु होनेके योग्य नहीं हैं। जो अपनेको शिष्यका शिष्य मानते हैं, केवल वे ही गुरु होनेके योग्य हैं। जिनकी गुरुके प्रति वैसी ही दृढ़ भक्ति है जैसी उनकी भगवान्‌के प्रति है, ऐसे गुरुनिष्ठ भक्त ही गुरुका कार्य करनेमें समर्थ हैं। अपने प्रति वैष्णव अभिमान रहनेपर गुरु नहीं हुआ जा सकता। इसलिए जो गुरुका कार्य करते हैं, वे न तो कभी अपनेको वैष्णव या गुरु कहते हैं तथा न ही ऐसा मानते हैं। इसीलिए हमारे श्रीगुरुदेव कभी भी अपनेको गुरु नहीं कहते थे, इसीलिए महाजनोंने गाया है—

आमि त वैष्णव, ए बुद्धि हइले,
अमानि ना हब आमि।
प्रतिष्ठाशा आसि, हृदय दूषिबे,
हइब निरयगामी॥
तोमार किङ्कर, आपने जानिब,
गुरु अभिमान त्यजि।
तोमार उच्छिष्ट, पद-जल-रेणु,
सदा निष्कपटे भजि॥
निजे श्रेष्ठ जानि, उच्छिष्टादि दाने,
हबे अभिमान भार।
ताइ शिष्य तव, थाकिया सर्वदा,
ना लइब पूजा कार॥

अर्थात् हे गुरुदेव! यदि मेरी ऐसी बुद्धि हो गयी कि मैं वैष्णव हो गया हूँ, तो फिर मैं कभी भी अमानी (अपने मानकी कामना न करनेवाला) नहीं हो पाऊँगा। प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी आशा मेरे हृदयमें आकर हृदयको दूषित कर देगी, जिसके फलस्वरूप मैं नरकगामी होऊँगा। इसलिए मैं गुरु होनेका अभिमान त्यागकर सर्वदा ही अपनेको आपका दास मानता रहूँगा तथा सर्वदा ही निष्कपटरूपसे आपका उच्छिष्ट प्रसाद, चरणामृत, चरणधूलिको ग्रहण करता रहूँगा। यदि मैं अपनेको श्रेष्ठ मानकर दूसरोंको अपना उच्छिष्ट प्रदान

करूँगा, तो प्रबल अभिमानके भारसे दब जाऊँगा। इसीलिए [हे गुरुदेव!]मैं सर्वदा आपका शिष्य होकर ही रहूँ तथा किसीकी भी पूजा ग्रहण न करूँ।

महाभागवत ही गुरु होते हैं। जो सर्वत्र गुरु-दर्शन करते हैं, ऐसे महाभागवत ही गुरुका कार्य कर सकते हैं। वे लघुको गुरु कर सकते हैं तथा सभीको कृष्णभक्त बना सकते हैं। स्वयं भक्त हुए बिना दूसरेको भक्त नहीं बनाया जा सकता। इसलिए गुरु होनेका तात्पर्य है—कृष्णभक्त होना। जो गुरु होना चाहता है, उसे सब समय अपनी समस्त इन्द्रियोंको कृष्णकी सेवामें नियुक्त करना होगा। गुरुनिष्ठ न होनेपर अर्थात् गुरुके प्रति दृढ़निष्ठा न रहनेपर गुरुका कार्य करनेका अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता।

महाभागवत तृणसे भी अधिक दीन-हीन होते हैं, वे अपनेको सबसे छोटा मानते हैं। शिष्य होकर मैंने बहुत दिनोंतक दासता की, अब शिष्यगिरि अच्छी नहीं लगती, अतः अब मुझे गुरुगिरि करनी चाहिए—वे ऐसा कभी नहीं सोचते। वे गुरुका कार्य तो करते हैं, परन्तु उनके हृदयमें गुरु होनेका अभिमान कदापि नहीं रहता।

हमारे जैसे दुर्भागे जीवोंका उद्धार करनेके लिए भगवान्ने परजगत् (अपने धामसे) जिन महापुरुषोंको मनुष्य वेशमें इस जगत्में भेजा है, जो त्रितापग्रस्त मनुष्योंका उद्धारकर उन्हें भगवान्के धाममें भेज सकते हैं, भगवान्के ऐसे निजजन जो भगवान्के दूत एवं वैकुण्ठवाणीके वाहक हैं, केवल वे ही गुरुका कार्य कर सकते हैं।

भोगप्रवृत्ति एवं त्यागप्रवृत्तिकी बलि देनेके लिए जिनकी वाणीरूपी खड्ग[तलवार] सर्वदा प्रस्तुत है, वे ही वास्तवमें साधु-गुरु हैं।

विषयविग्रह कृष्णकी सेवाके अतिरिक्त जिनका अन्य कोई कार्य, बुद्धि या दर्शन नहीं है, वे ही श्रीगुरुपादपद्म हैं। वे किसीकी भी चापलूसी नहीं कर सकते, वे वास्तव सत्यके निर्भीक प्रचारक हैं।

जो हरिकथाके अतिरिक्त अन्य बातें कभी भी नहीं बोलते, जो भगवान्की सेवाके अतिरिक्त अन्य किसी भी धर्मका उपदेश नहीं देते हैं, जो २४ घन्टेमें एक सेकेण्डके लिए भी अन्य कार्य नहीं करते हैं, वे ही गुरु होनेके योग्य हैं।

An insincere hypocrite (भण्ड) cannot be a guru. Mundane activity (जागतिक कार्य) में जिसकी aspiration (आकाङ्क्षा) है, वह कभी भी गुरु नहीं हो सकता। Pseudo guru should be turned out and exposed. (कृत्रिम या नकली गुरुका मुखौटा उतार देना चाहिए)। भगवान्के चरणोंमें जो समस्त जीव surrender (समर्पित) कर रहे हैं, बीच मार्गमें यदि कोई उन्हें अपनी सेवामें लगाता है, कनक-कामिनी प्रतिष्ठा संग्रहमें नियुक्त करता है, तो उसे ठग जानकर सम्पूर्ण रूपसे उसका त्याग करना होगा। ऐसे असत् व्यक्तिकी कथा नहीं सुननी चाहिए। विषयविग्रहकी सेवाकी वस्तुको बीच मार्गमें आत्मसात्कारी (अपने भोगमें लगानेवाला) व्यक्ति कभी भी गुरु कहलाने योग्य नहीं है।

शास्त्र कहते हैं—

इहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।
निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते॥

(नारदीय पुराण)

जिनके कर्म, मन, वाणी भगवान्की सेवामें नियुक्त हैं, समस्त अवस्थाओंमें वे जीवन्मुक्त कहलाते हैं। ऐसे लोग ही गुरु होनेके योग्य हैं।

भगवान्की सेवा छोड़कर जो social service के लिए तैयार रहते हैं, ऐसे नास्तिकोंका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिए। ऐसे व्यक्ति कभी भी अपना या दूसरोंका कल्याण नहीं कर सकते। ऐसी social service करते-करते वे मायाके गर्तमें गिर जाते हैं एवं सभीको विपत्तिमें डाल देते हैं।

प्रश्न ६—सद्गुरुके क्या लक्षण हैं?

उत्तर—जिनका सर्वत्र भगवत्-दर्शन, भगवत्-सम्बन्ध-दर्शन, सर्वत्र गुरु-दर्शन होता है, जो तृणसे भी अधिक दीन-हीन, वृक्षके समान सहिष्णु, अमानी तथा मानद होकर निरन्तर हरिकीर्त्तनमें रत तथा तन्मय रहते हैं, ऐसे कृष्णप्रेष्ठ महापुरुषोंका सङ्ग तथा उनकी सेवाके द्वारा ही हमारे मङ्गलका मार्ग खुल सकता है। महाभाग्यके फलसे ऐसे सद्गुरु प्राप्त होते हैं। मायाके दासको गुरुके रूपमें सजाकर भोगबुद्धिके द्वारा गौरसुन्दरके निकट नहीं पहुँचा जा सकता। श्रीगौरसुन्दरके इस जगत्में प्रकटलीलामें न रहनेपर भी यदि निरन्तर निष्कपट साधु-गुरुके सङ्गमें रहा जाय, उनकी चित्तवृत्तिमें अपनी चित्तवृत्तिको dovetailed (संलग्न) कर सकें, उनकी इच्छाके साथ अपनी इच्छाको मिला सकें, यदि ऐसे कृष्णतत्वविद् श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंमें शरणागत हो सकें, उनके चरणोंमें पूर्णरूपसे आत्मसमर्पण कर सकें, तो ऐसे उत्तम सङ्ग, सेवा एवं आनुगत्यके द्वारा ही हमारा मङ्गल होगा।

जो भगवान्को ठगनेके लिए माला-जपका अभिनय करते हैं या खूब चिल्लाते हैं, परन्तु प्रत्येक शब्दमें कृष्णदर्शन, प्रत्येक उच्चारणमें साक्षात् गौरसुन्दरका दर्शन नहीं करते हैं, हमें ऐसे तथाकथित गुरुका सङ्ग नहीं करना चाहिए। समस्त पाण्डित्यकी अन्तिम सीमा कृष्ण-सम्बन्ध है। यदि गुरुके आनुगत्यमें हमारी भगवान्की सेवा करनेकी चित्तवृत्ति उदित होती है, तब समग्र जगत्को हम भगवान्की सेवाके उपकरणके रूपमें देखेंगे। जगत्की समस्त वस्तुओंके द्वारा भगवान्की सेवा करेंगे, तभी हमारा मङ्गल होगा।

('श्रील प्रभुपादके उपदेशामृत' नामक ग्रन्थसे अनुदित)

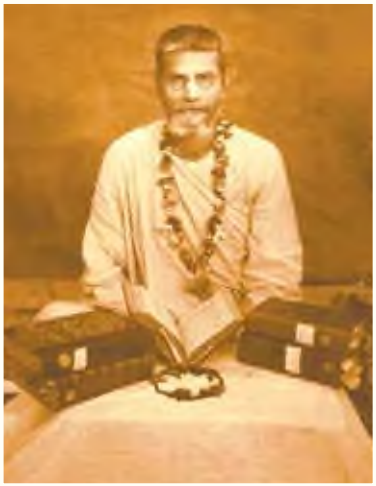

श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका वाणी-वैभव

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ,
तेघरिपाड़ा, नवद्वीप, नदीया।
दिनांक-२७/१२/१९६१

स्नेहभाजनेषु—

------। २३/१२/६१ तारिखके ८० पंक्तियोंमें लिखे हुए तुम्हारे एक पोष्टकार्डको प्राप्तकर विशेष आनन्दित हुआ। तुम्हें उपाधिके लिए डेढ़ वर्षके दीर्घ समयतक कालेजमें रहना होगा। मैं भी प्रतिदिन ही तुम्हारी चिन्ता करता हूँ तथा श्रील नरोत्तम ठाकुरके एक कीर्तनका स्मरण करता हूँ। उन्होंने लिखा है—"रामचन्द्र सङ्ग मागे

श्रीमन्महाप्रभुकी कथाओंका प्रचार ही वास्तव वदान्यता तथा जीवोंके प्रति दया है

नरोत्तम दास।" सब विषयोंमें ईश्वरकी इच्छा ही प्रबल होती है, इसका सर्वदा ही स्मरण रखना। वे जिसका जिस प्रकारसे गठन करते हैं, वह वैसा ही गठित होता है। भगवान्‌की इच्छाके विरुद्ध जानेकी क्षमता किसीमें भी नहीं है।

जैसा भी हो, तुम अच्छे प्रकारसे पास होनेका विशेष यत्न करना। वैष्णवोंका हृदय समस्त गुणोंकी विलासभूमि है। अतः जड़ जगत्‌के समस्त गुण तथा ज्ञान-विज्ञान वैष्णवोंमें रहते हैं। जड़-विज्ञान आसुरिक होनेपर भी देवतालोग उस विषय[जड़-विज्ञान]में कम नहीं हैं। अतः तुम अच्छे अङ्कोंसे पास होकर आना।

तुम सर्वदा ही सत्यकथाके प्रचारमें व्रती रहना। सत्साहसयुक्त व्यक्तियोंकी भगवान् ही सहायता करते हैं। समस्त संसारके द्वारा असत्पथपर चलने पर भी हम उसकी दासता नहीं करेंगे। हम लोगोंने पापप्रवृत्ति या असत्कथाओंको किसी भी प्रकारसे प्रश्रय देनेके लिए जन्म ग्रहण नहीं किया है। वर्तमान विश्वविद्यालयोंकी आसुरिक शिक्षाओंको किञ्चित् भी प्रश्रय देनेके लिए हम तैयार नहीं हैं। कलिकी प्रबलतासे विश्वकी जैसी प्रगति हो रही है, उसे हमें रोकना होगा। विश्वके मङ्गलकामी व्यक्तियोंका यही एकमात्र व्रत होना चाहिए। इसीका नाम महावदान्यता है तथा इसीको ही जीवके प्रति दया कहते हैं। तुम निर्भीकरूपसे सत्यकथा कहना। सत्यका प्रचार करनेके लिए नित्यानन्द प्रभु, हरिदास ठाकुर आदि वैष्णवोंको पाषण्डियोंके प्रहार भी सहने पड़े थे। यहाँ तक कि बहुतसे महाजनोंको सत्यके प्रचारके लिए प्राण भी त्यागने पड़े थे। अतः हमें भयभीत नहीं होना है। महाप्रभुकी policy—तृणसे भी अधिक सुनीच होकर एवं वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु होकर जीवोंके प्रति दया या प्रचार करना होगा। भगवान्‌की कथाओंका प्रचार ही जीवोंके प्रति दया है।

अधिक क्या लिखूँ? मेरा शरीर ठीक ही है। मैं आगामी ४/१/६२ को मथुरा जा रहा हूँ। इति—

श्रीगौरजनकिङ्कर

B. P. Keshava

श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव

(श्रीगौड़ीय पत्रिका—वर्ष-४२, संख्या-२ से अनुदित)

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजका वाणी-वैभव

श्रीगौड़ीय-पत्रिकाका सत्ताईसवाँ वर्ष

(वर्ष-१६, संख्या-११-१२ से आगे)

मङ्गलाचरणके माध्यमसे आश्रय एवं विषय-विग्रहकी वन्दना

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी मुख-पत्रिका "श्रीगौड़ीय पत्रिका"ने गौड़-पूर्णानन्द श्रीमध्वाचार्य द्वारा परिसेवित श्रीबालगोपालजीको अपने वक्षस्थल [मुख्यपृष्ठ] पर धारण करते हुए शुभ सत्ताईसवें वर्षमें पदार्पण किया है। रूपानुग गौड़ीय-वैष्णवगण—ब्रह्म-मध्व-गौड़ीय सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं, इसी कारण गौड़ीय-वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने चार वैष्णव-सम्प्रदायोंमें प्रमुख ब्रह्म-सम्प्रदायके आचार्य श्रीआनन्दतीर्थ मध्वमुनिकी इस प्रकार वन्दना की है—"आनन्दतीर्थ-नामा सुखमयधामा यतिर्जीयात्।" [अर्थात् अनन्त सुखके धामस्वरूप श्रीआनन्दतीर्थ नामक संन्यासीप्रवर जययुक्त हों।] विशेष आनन्दका विषय यह है कि श्रीमध्वाचार्यपादने भी दधिमन्थनके दण्ड एवं सूत्रको धारण किए हुए श्रीनर्त्तन-गोपालके उद्देश्यसे जिस स्तवगुच्छकी रचना की है, उस "श्रीमद्द्वादशस्तोत्रम्" (संक्षिप्तसारम्) के द्वारा ही श्रीपत्रिकाके नववर्षका मङ्गलाचरण एवं शुभारम्भ किया गया है। हम भी वर्षके आरम्भमें वेद एवं वेदशास्त्रोंके अनुगत गुरुवर्गके आनुगत्यमें हनुमान एवं भीमके अवतार श्रीपूर्णप्रज्ञ यतिराज और उनके परम-उपास्य श्रीबालगोपालदेवकी स्तुति एवं जयगान द्वारा निज वक्तव्यकी सूचना कर रहे हैं—

"प्रधारा मध्वो अग्रियो महीरपो विगाहते।
हविर्हविषु वन्द्यः।
अस्मभ्यमिन्द विन्द्रयुर्मध्वः पवस्व धारया।
पर्जन्यो वृष्टिमान् इव॥"

(ऋग्वेद ९/७/२,९)

[बद्रीनाथ गमन करनेमें अग्रणी, श्रीवेदव्यास द्वारा बुलाये गये, समस्त शिष्योंमें परम-वन्दनीय अर्थात् सर्वश्रेष्ठ गुरुके रूपमें पूजित श्रीमन्मध्वाचार्य जलप्रवाह-विशिष्ट महान गङ्गा आदि ज्ञानरूपी नदियोंकी धारामें अवगाहन करते हैं। हे सर्वाभीष्ट-प्रदानकारीजनोंमें प्रमुख, वायुके अवतार! आप परम-ऐश्वर्यपूर्ण श्रीविष्णुका उनके निजगणोंसे मिलन करा देते हैं अर्थात् उनमें सम्बन्ध-ज्ञान उदित करा देते हैं। आपका नाम है—श्रीमध्व। वर्षा करनेवाले मेघकी भाँति आप

हमारे प्रति ज्ञानधाराका वर्षण करते हुए उसका सर्वत्र वितरण करें तथा हमें पवित्र करें।]

देवकिनन्दन नन्दकुमार वृन्दावनान्दन गोकुलचन्द्र।
कन्दफलाशन सुन्दररूप नन्दितगोकुल वन्दितपाद॥
दामोदर दूरतरान्तर वन्दे दारित-पारग-पार परस्मात्॥

(द्वादशस्तोत्रम् ६/५, ५/८)

[हे वृन्दावन-विहारी! गोकुलके आनन्दन! पूजितचरण! कन्दफलभोजी! सुन्दरमूर्त्ति! गोकुलचन्द्र! नन्दकुमार! देवकि (यशोदा)-नन्दन! हे दामोदर! हे असज्जनदुर्लभ! हे भवसागर-पारगामी-मुक्तपुरुषोंके आश्रय! मैं आपकी वन्दना करता हूँ।]

श्रीमन्मध्वाचार्यका आविर्भाव स्थान

यहाँ श्रीमद् आनन्दतीर्थपादके आविर्भाव स्थान—उडुपी-क्षेत्रके सम्बन्धमें कुछ चर्चा करना निश्चित रूपसे अप्रासङ्गिक नहीं होगा। भारतके दक्षिण-पश्चिम भागमें गोकर्णक्षेत्रसे लेकर कन्याकुमारी तक अतिविशाल पर्वतश्रेणी विद्यमान है जो 'सह्याद्रि', 'मलयगिरि', 'कोलपर्वत' आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। यही पवित्र भूभाग 'परशुराम क्षेत्र' के रूपमें परिचित है। यह आदि-केरल, मध्य-केरल एवं अन्त-केरल—इन तीन भागोंमें विभाजित है। इनमेंसे आदि-केरल उत्तर-कर्नाटक एवं दक्षिण-कर्नाटक नामक दो प्रदेशोंमें विभिक्त है। दक्षिण-कर्नाटक प्रदेशमें 'रजतपीठपुर' है तथा इसका अन्य प्राचीन नाम 'उडुपीक्षेत्र' है। श्रीमध्वाचार्य उडुपीसे संलग्न पाजकाक्षेत्रमें आविभूर्त हुए थे।

उडुपी नामकी सार्थकता तथा उडुप-चन्द्रसे शिक्षा

श्रीपत्रिकाके सत्ताईसवें वर्षमें प्रवेश करनेसे उडुपी-क्षेत्रके साथ अश्विनी, रोहिणी, कृत्तिका आदि सत्ताईस तारामण्डलों (नक्षत्रों) का विषय स्मृतिपटलपर जागृत होता है। ये सभी चन्द्रकी पत्नियाँ हैं। 'उडु' अर्थात् नक्षत्र एवं 'प' अर्थात पति, अतः उडुप अर्थात् नक्षत्रपति चन्द्र। चन्द्रकी तपस्यासे प्रसन्न रुद्र-देवताके अधिष्ठान-क्षेत्रके रूपमें यह स्थान 'उडुपी' नामसे प्रसिद्ध है। पुराणमें वर्णन हुआ है—चन्द्रकी सत्ताईस पत्नियाँ सभी दक्ष-कन्याएँ हैं। चन्द्र केवलमात्र रोहिणीके प्रति ही अत्यधिक आसक्त थे, इस कारण दक्षने चन्द्रको यह अभिशाप दिया कि 'चन्द्र कलाहीन हो जाएगा'। तब कलाक्षयके निवारणके लिए चन्द्रने अब्जारण्यमें तपस्याकर चन्द्रमौलीश्वर श्रीरुद्रदेवको संतुष्ट किया। श्रीरुद्रने चन्द्रको यह आर्शीवाद प्रदान किया कि एक पक्षमें चन्द्रकी कला क्षीण होगी तथा अन्य पक्षमें कला वर्धित होगी। उसी समयसे कृष्ण एवं शुक्ल पक्षका

प्रचलन हुआ है। अलक्ष्यवेगयुक्त कालके प्रभावसे जिस प्रकार चन्द्रकी कलाएँ ही क्षीण एवं वर्धित होती हैं, परन्तु मूल चन्द्र कभी क्षीण अथवा वर्धित नहीं होता; उसी प्रकार जन्मसे लेकर मृत्यु तक केवल इस देहके ही विकार लक्षित होते हैं, शुद्ध आत्माकी किसी प्रकारसे कोई विकृति नहीं होती। सूर्यकी किरणोंके द्वारा ही प्रकाशित चन्द्रकी कलाएँ क्षीण अथवा वर्धित होती हैं; उसी प्रकार भगवत्-उन्मुख एवं भगवत्-विमुख होनेकी योग्यता जीवमें विद्यमान है, हम उडुप(नक्षत्रपति) चन्द्रसे यही शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

गीता-भागवत-उपनिषदोंमें चन्द्र-सूर्यादि श्रीभगवान्‌की विभूतिके रूपमें वर्णित

"एकश्चन्द्रः तमो हन्ति न च तारागणैरपि" [अर्थात् एक चन्द्रसे ही अन्धकार नष्ट हो जाता है, तारोंके समूह द्वारा वह सम्भवपर नहीं।] इस वाक्यके द्वारा तारोंकी अपेक्षा चन्द्रकी प्रधानता(श्रेष्ठता) स्थापित हुई है। किन्तु श्रीगीतामें भगवान् कहते हैं—

"रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशि सूर्ययोः"

(गीता ७/८)

"आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्—
—नक्षत्राणामहं शशी॥"

(गीता १०/२१)

"न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।"

(गीता १५/६)

अर्थात् हे कौन्तेय! जलमें विद्यमान रस तथा सूर्य एवं चन्द्रमें विद्यमान ज्योति मैं ही हूँ। मैं द्वादश आदित्योंमें विष्णु नामक आदित्य, प्रकाश देनेवालोंमें महाकिरणशाली सूर्य तथा नक्षत्रोंमें चन्द्र हूँ। मेरे सर्वप्रकाशक धामको सूर्य भी प्रकाशित नहीं कर सकता, चन्द्र तथा अग्नि भी नहीं।

श्रीमद्भागवतमें कहा गया हैं—

"सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्षरक्षसाम्"

(श्रीमद्भा. ११/१६/१६)

"तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्या च भूपतिम्"

(श्रीमद्भा. ११/१६/१७)

"अपां रसश्च परमस्तेजिष्टानां विभावसुः।
प्रभा सूर्येन्दु-ताराणां शब्दोऽहं नभसः
परः॥"

(श्रीमद्भा. ११/१६/३४)

अर्थात् हे उद्धव! मैं नक्षत्रों एवं औषधियोंमें उनका स्वामी चन्द्र हूँ, यक्ष एवं राक्षसोंमें उनका अधिपति कुबेर-स्वरूप हूँ। ताप एवं प्रकाश प्रदान करनेवालोंमें मैं सूर्य हूँ तथा मनुष्योंमें मैं राजा हूँ। मैं जलमें मधुररस हूँ, तेजस्वीगणोंमें सूर्य हूँ, चन्द्र एवं तारोंकी ज्योति हूँ तथा आकाशमें शब्द-स्वरूप हूँ।

उपनिषदों में कहा गया है—

"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र-तारकं,
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं,
तस्य तासा सर्वमिदं विभाति॥"

(कठ, मुण्डक, श्वेताश्वर)

अर्थात् उस स्वतः प्रकाशित परब्रह्मको सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र तथा समस्त विद्युत भी प्रकाशमान नहीं कर सकते, अग्निका तो फिर कहना ही क्या? किन्तु उसका अनुसरण करके सूर्य, चन्द्रादि सभी दीप्तिमान होते हैं, उन (परब्रह्म) की अङ्गकान्तिसे ही समस्त जगत् ज्योतिर्मय होता है। (क्रमशः)

(श्रीगौड़ीय पत्रिका, वर्ष-२७, संख्या-१से अनुदित)

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण
गोस्वामी महाराजके
हरिकथामृत-सिन्धुका एक बिन्दु-

हमारा एक परम-बान्धव अवश्य होना चाहिए

[११ मार्च, १९९३को श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें श्रीउपदेशामृतके चतुर्थ श्लोकपर प्रदत्त हरिकथासे उद्धृत-]

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति च।
भुंक्ते भोजयते चैव षड्विधा प्रीतिलक्षणम्॥

(श्रीउपदेशामृत-४)

[विशुद्ध भक्तोंको उनकी आवश्यकतानुसार वस्तु देना, विशुद्ध भक्तोंके द्वारा दी हुई प्रसादरूप वस्तु ग्रहण करना, भजन-सम्बन्धी अपनी गुप्त बातें भक्तोंके निकट कहना, भजन-सम्बन्धी रहस्यमयी गुप्त बातोंको उनसे पूछना, भक्तोंके द्वारा दिए गए प्रसादको प्रीतिपूर्वक भोजन करना और उन्हें प्रीतिपूर्वक भोजन कराना—ये छः प्रकारके सत्सङ्गरूप प्रीतिके लक्षण हैं।]

हरिभक्तिसुधोदय (८/५१) में एक श्लोक है—

यस्य यत्सङ्गतिः पुंसो मणिवत्
स्यात् स तद्गुणः।
स्वकुलद्धर्यै ततो धीमान्
स्वयूथान्येव संश्रयेत्॥

[जिस प्रकार मणिके निकट स्थित वस्तुके गुण मणिमें प्रतिबिम्बित होते हैं, उसी प्रकार व्यक्ति जिसका सङ्ग करता है, उसके गुण उसमें सञ्चारित होते हैं। इसलिए विवेकी पुरुषको अपनेसे श्रेष्ठ, स्नेहशील एवं सजातीय साधुओंका ही आश्रय(सङ्ग) ग्रहण करना चाहिए।]

जिस प्रकार अनजानेमें या जानबूझकर यदि कोई व्यक्ति कुसङ्गके प्रति आसक्त होकर कुसङ्ग करता है, तो कुसङ्गका फल अवश्य ही उस व्यक्तिमें परिस्फुट होगा। उसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति साधुके प्रति आसक्त होकर साधुसङ्ग करता है, तो साधुसङ्गकी जो महिमा है वह उस व्यक्तिमें अवश्य प्रवेश करेगी। इसीलिए हम साधुओंका या वैष्णवोंका ही सङ्ग करेंगे। कुसङ्गमें रुचि होनेपर हम कुसङ्ग ही करेंगे और घोर नरकमें जाएँगे, किन्तु साधुओंका सङ्ग करनेसे भगवद् भक्ति प्राप्त करके हम धीरे-धीरे आगे बढ़ेंगे। इसीलिए यदि प्रीति करनी है, तो साधुओंके साथ उक्त श्लोकानुसार करनी होगी।

'ददाति'—जो हमारी प्रिय वस्तु है और वैष्णवोंके भजनके अनुकूल है, किन्तु उनके पास नहीं है, तो

वह वस्तु उनको दो। जो भी वस्तु वैष्णवोंके भजनके अनुकूल है, वह उनको देनी चाहिए।

'प्रतिगृह्णाति'—जो साधु-वैष्णव हमारे प्रति स्नेहशील हैं, वे अनुग्रह करके हमको जो वस्तु देते हैं, हम उसे आदरपूर्वक ग्रहण करेंगे।

श्रीनारद ऋषि अपना वृत्तान्त सुनाते हुए कहते हैं—"बचपनमें मैं उन ऋषियोंके पास जाता था, जो हमारे गाँवमें चातुर्मास्य-व्रत करनेके लिए आये हुए थे। जब वे नदीमें स्नान करनेके लिए जाते तो मैं उनके सूखे कपड़ोंको लेकर उनके साथ जाता और उनके गीले कपड़ोंको लेकर लौटता। उनके प्रसाद सेवाके समय मैं पत्तल साफ करके उनके सामने रख देता, उनके लोटेमें पानी दे देता। वे लोग प्रसाद पानेके बाद मुझे आदेश देते—'बेटा, यह कुछ प्रसाद हमने तुम्हारे लिए रख दिया है। कोई व्यञ्जन अच्छा होता, तो उसे अपने पत्तलमें ही रख देते थे और बड़े प्रेमके साथ आदेश देकर मुझे कहते कि तुम इसे ग्रहण कर लो।' इस प्रकार उन ऋषियोंके द्वारा प्रदत्त प्रसादका सेवन करनेमात्रसे ही मेरा कल्याण हो गया। मेरा चित्त निर्मल हो गया और मेरे हृदयमें भगवत् भक्तिका प्रवेश हुआ। यदि मैं उनका जूठन ग्रहण नहीं करता तो ऐसा सम्भव नहीं होता।"

इसलिए वैष्णवोंका जूठन, उनके मुखसे निकली कथा, उनका पदधौत जल, उनकी पदरज—ये सब वस्तुएँ हमारे भजनके लिए बहुत बड़ा बल हैं। इसमें किसीको भी कभी कोई संदेह नहीं होना चाहिए। हममें ऐसी घृणा न आये कि वैष्णवोंके चरणकी धूलि हम कैसे स्पर्श करें? बल्कि छिपकर झड़ू ठाकुरकी भाँति उनकी चरणधूलिकी सेवा करें। तत्पश्चात् 'प्रतिगृह्णाति'—जो वे देते हैं, उसे प्रसादके रूपमें स्वीकार करो।

'गुह्यमाख्याति पृच्छति'—अपने मनकी बात साधुओंके पास, गुरुके पास अपना बन्धु समझकर उनके चरणोंमें निवेदन करो। उनसे ही पूछना चाहिए, उनसे ही सुनना चाहिए। अन्ततः संसारमें एक ऐसा परम-बान्धव होना चाहिए, जिनके सामने हम अपना हृदय खोलकर रख सकें। हम उनकी चिकित्सा (परामर्श) ग्रहण कर सकें। वे जैसा कहते हैं, वैसा करें। कभी-कभी हम देखते हैं कि हमें एक भी बन्धु नहीं मिलता। ऊपरसे तो हम कहते हैं—'हे गुरुदेव आप मेरे हृदयके बन्धु हैं,' किन्तु भीतरमें ऐसी कितनी बातें छिपाते हैं, जिनको हम उनके सामने कह नहीं पाते। इसलिए हमारा सर्वनाश होता है। हे भाई! अन्ततः एक बन्धु अवश्य होना चाहिए। बहुत हों, तो कोई आपत्ति नहीं। इसलिए गुरु-वैष्णवोंमें कोई एक बन्धु बनाओ और अपने भीतरमें जितनी भी बुराइयाँ हैं वे सब उनको दिखला दो कि मेरे हृदयमें ये सब हैं। वे अनुग्रह करके उन सब बुराइयोंको हमारे हृदयसे हटा देंगे और वहाँपर भगवान्‌को बैठा देंगे। यदि हम उनसे कपटता करेंगे, तो यह मलद्वारमें एक फोड़ेके समान होगा।

किसी एक व्यक्तिको मलद्वारमें एक फोड़ा हो गया। इसलिए लज्जाके कारण उसने इस विषयमें माता, पिता, भाई आदि किसीको भी नहीं बताया। तब धीरे-धीरे वह फोड़ा भगंदर बन गया जिसके अन्दर अब उसका हाथ भी चला जाता। अब क्या किया जा सकता था? चिकित्सा नहीं हो सकी और वह साधारण लज्जाके कारण मारा गया। इसलिए हमें सद्‌बन्धु, सद्‌वैद्यकी आवश्यकता है, जिनपर हम सम्पूर्ण विश्वास कर सकें और अपना हृदय खोलकर उनको दिखला सकें। उनके निकट ही हरिकथा जिज्ञासा करें और उनसे ही सुनें।

'भुंक्ते भोजयते चैव', भुंक्ते—उनके द्वारा प्रदत्त प्रसाद आदि स्वीकार करें। भोजयते चैव—उनकी प्रिय वस्तु उनको भोजन कराएँ। इसके द्वारा उनका भाव हमारे हृदयमें संक्रमित होगा और उसीसे प्रतिकूल दूर होकर हमारा समस्त मङ्गल होगा।

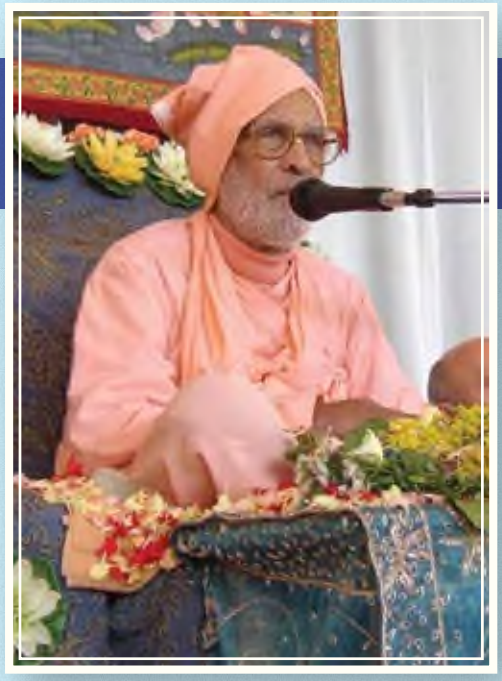

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके
हरिकथामृत-सिन्धुका एक बिन्दु—

हरिकथाके श्रवणमात्रसे ही भक्तिराज्यमें सबकुछ प्राप्त होगा

[२२ अप्रैल, १९९४ को श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें श्रीमद्भागवतम् दशम-स्कन्धपर प्रदत्त हरिकथासे उद्धृत—]

श्रील गुरुदेव—भगवान्‌को कैसे जाना जा सकता है? एकमात्र भगवान्‌की कृपासे ही भगवान्‌को जाना जा सकता है। वह कृपा कैसे प्राप्त होगी?

ज्ञानेप्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्त्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्॥

(श्रीमद्भा॰ १०/१४/३)

[इन्द्रियोंसे उत्पन्न ज्ञानके द्वारा भगवान्‌के स्वरूप-ऐश्वर्य और महिमाका विचार करनेका प्रयास परित्यागकर जो लोग अपने-अपने आश्रममें रहकर अथवा साधुओंके निकट रहकर साधुओंके मुखसे स्वतः उच्चारित अथवा उनके निकट रहनेके कारण स्वतः ही कानोंमें प्रवेश करनेवाले आपके(भगवान्‌के) नाम-रूप-गुण-लीला परायण वचनोंको अपने शरीर, मन और वाक्यों द्वारा सत्कार करते-करते जीवन धारण करते हैं, उन लोगोंके द्वारा अन्य कोई कर्म न किए जानेपर भी त्रिलोकमें अन्य व्यक्तियोंके द्वारा अजित आप भगवान् ऐसे लोगों द्वारा जीत लिए जाते हैं अर्थात् उनके वशीभूत हो जाते हैं।]

जो तीनों लोकोंके लिए अजेय हैं, वे क्या ज्ञानके प्रयास द्वारा जीत लिये जाएँगे? [यहाँ] ज्ञानके प्रयासका अर्थ क्या है? चित्तवृत्तिका निरोध। चित्तवृत्तिके निरोधका क्या अर्थ है? नैति, नैति, नैति। मायावादियों और अद्वैतवादियोंमें यही प्रधान विषय है—'यह ब्रह्म है? नहीं; यह ब्रह्म है? नहीं; यह ब्रह्म है? नहीं;—नहीं, नहीं करते-करते वे अन्ततक चले जाते हैं। इस प्रकारके ज्ञानके प्रयास द्वारा भगवान् वशीभूत नहीं होंगे। इसलिए कहा गया है—'ज्ञानेप्रयासमुदपास्य'—ज्ञान, ध्यान, होम, जप, तप—सबको छोड़ो। इनके प्रति विश्वास मत करो। यह तुमको ठग देंगे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर इस श्लोककी टीकामें कहते हैं—'ईषदप्यकृत्वा'—ज्ञानके

लिए तनिक भी प्रयास मत करो। कौन-सा ज्ञान? निर्विशेषज्ञान जो भक्तिका विरोधी है, केवल उसके लिए नहीं, अपितु तत्त्वज्ञानके लिए भी तनिक प्रयास मत करो—कि श्रीकृष्ण भगवान् हैं, वे सच्चिदानन्दघन हैं, परब्रह्म हैं, उनके ये सभी अवतार हैं—यह सब भी छोड़ो। तत्त्वज्ञान भगवद्भक्तिका सहायक नहीं है। इसीलिए कहा गया है—'ज्ञानकर्मादि अनावृतम्' [भगवद्भक्ति ज्ञान-कर्मसे आवृत नहीं होनी चाहिए।] यहाँ तक कि जो तीर्थोंमें परिक्रमा करते हो उसको भी छोड़ो। तीर्थोंकी परिक्रमा द्वारा भी नहीं होगा। [अर्थात् भगवान् वशीभूत नहीं होंगे।]

भक्त—जैसे सनातन गोस्वामी प्रतिदिन परिक्रमा करते थे, तो क्या किसी अधिकारी व्यक्तिके लिए भी परिक्रमा द्वारा नहीं होगा।

श्रील गुरुदेव—यहाँ जो कहा गया है, उसके अनुसार अपना-अपना अधिकार समझना होगा कि किसका अधिकार है या नहीं।

भक्त—तत्त्वज्ञानके अनुशीलनके लिए क्यों मना किया गया है?

श्रील गुरुदेव—तत्त्वज्ञानके द्वारा श्रीकृष्णका कोई विलासरूप और उनके ऐश्वर्ययुक्त नारायणतत्त्वादिका कोई विचार आ सकता है, किन्तु कृष्णके बाल-गोपालरूप दधिचोर, माखनचोर, वनफूलमालासे विभूषित होकर घरोंमें चोरी करनेवाला अथवा मधुरभावोंसे युक्त कृष्णका रूप तत्त्वज्ञानके अनुशीलनसे नहीं आयेगा। तत्त्वज्ञानके द्वारा ऐश्वर्य-बुद्धि आ जाएगी।

भक्त—क्या सम्बन्धज्ञानकी आवश्यकता नहीं है?

श्रील गुरुदेव—किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। किसी वस्तुकी भी आवश्यकता नहीं है।

भक्त—क्या [कृष्णसे अपने] सम्बन्धज्ञानकी भी आवश्यकता नहीं है?

श्रील गुरुदेव—किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। यही तो यहाँ कहा जा रहा है, कोई भी चीजकी आवश्यकता नहीं है। केवल [श्रद्धापूर्वक] हरिकथा सुननेकी आवश्यकता है, हरिकथाके द्वारा ही सबकुछ—तत्त्वज्ञान, सम्बन्धज्ञान, साधनभक्ति, भावभक्ति, प्रेमभक्ति जो कुछ भी है, वह सब प्राप्त होगा। अलगसे कोई प्रयास मत करो। अब इससे बढ़कर सम्बन्धज्ञान क्या हो सकता है यदि हम कृष्णके साथ यशोदा माताका चरित्र सुनें, कृष्णके साथ सखाओंका चरित्र श्रवण करें। समस्त सम्बन्धज्ञानका और समस्त तत्त्वज्ञानका तो यह चूड़ान्त है, इससे बढ़कर तत्त्वज्ञान अलगसे किस चीजसे होगा?

क्या तत्त्वज्ञान होगा [निर्विशेष] योगवाशिष्ठ पढ़नेसे या अन्य किसी चीजसे? इस श्रीमद्भागवतकी हरिकथाको जो प्रारम्भसे श्रवण करेंगे तो उसमें क्या बाकी रह जायेगा? इसलिए पृथकरूपसे कुछ करनेकी चेष्टा मत करो, अत्यन्त श्रद्धापूर्वक हरिकथाका श्रवण करो। ऐसी श्रद्धाको उत्पन्न करनेके लिए ही कह रहे हैं—'न तत प्रयासो कर्त्तव्यम्'—अलगसे किसी चीजके लिए प्रयास मत करो। हरिकथाके माध्यमसे ही सबकुछ प्राप्त होगा। हरिकथाको कैसे श्रवण(सेवन) करना होगा? 'नमन्त एव'—श्रद्धा और सत्कार सहित।

'जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्त्ताम्'। साधु-सन्त मौनी होते हैं। क्यों? वे ग्राम्य-कथाएँ(सांसारिक वार्त्ता) नहीं बोलते हैं। यदि ग्राम्य-कथा करनेवाला कोई व्यक्ति उनके निकट आ जाता है, तो वे मौन हो जाते हैं, उससे वे सांसारिक वार्त्ता नहीं करते। उन्हें उन सांसारिक विषयोंमें रुचि ही नहीं होती, इसलिये उन्हें मौनी कहा जाता है। किन्तु, किसी बछड़े अर्थात् श्रद्धालु व्यक्तिको देखते ही वे 'सन्मुखरितां', अर्थात् मुखरित हो जाते हैं। उनके मुखसे स्वतः ही हरिकथाएँ निकलने लगती हैं। जैसे श्रीपरीक्षित महाराजको देखकर श्रीशुकदेव गोस्वामी मुखरित हो गये थे।

श्रील सनातन गोस्वामी तो कोई बछड़ा देखे बिना ही प्रेरित हो जाते हैं। ऐसा है कि नहीं?

"यदि कोई साधक अन्य किसी भी भक्तिके अङ्गका पालन न भी करे, केवल हरिकथाओंका श्रवणमात्र ही करता रहे और उन कथाओंको, कथा–वाचकको, कथाके स्थानको, जिस ग्रन्थसे कथा हो रही हो—उस ग्रन्थको और कथा–श्रोताओंको श्रद्धाके साथ भूमिपर गिरकर प्रणाम करता रहे और उनके गुणोंका वर्णन करता रहे, तो वह साधक जहाँ भी होगा, वहींसे अजित भगवान्‌को जीत लेगा।"

और श्रील रूप गोस्वामी भी! कोई बछड़ा उपस्थित नहीं होनेपर भी उनके थनोंमें इतना दूध आ जाता है कि वह अपने–आप ही रिसने लगता है। वह टपका हुआ रस ही श्रीबृहद्भागवतामृत, भक्तिरसामृत–सिन्धु, उज्ज्वल–नीलमणि इत्यादि ग्रन्थ हैं। उस रसका जो पान करना चाहते हैं, उनके लिये कहा है, 'सन्मुखरितां भवदीयवार्त्ताम्'। कृष्णकी लीला–कथाएँ प्रेमसे पगे हुए सन्तोंके हृदयमें उमड़ने लगती हैं। जैसे दूध उबलकर गिरने लगता है, वैसे ही उनके मुखसे स्वतः ही हरिकथा निकलने लगती है।

तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्र–
पीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति।
ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढ़कर्णै–
स्तान् स्पृशन्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः॥

(श्रीमद्भा.४/२९/४०)

[हे राजन्! भागवतजनोंकी सभाओंमें महापुरुषोंके मुखसे निकलनेवाली भगवान् श्रीमधुरिपुके चरितामृतकी धाराएँ चारों दिशाओंमें प्रवाहित होती हैं। जो लोग अतृप्त एवं अभिनिविष्ट कर्णोंसे उन अमृतवाहिनी धाराओंका सेवन करते हैं, उन्हें भूख, प्यास, भय, शोक, मोह आदि स्पर्श भी नहीं कर सकते।]

इस श्लोकमें 'गाढ़कर्ण' का क्या अर्थ है? मैंने बहुत बार बतलाया है। श्रद्धाके साथ। प्रातः मैं वहाँ कुर्सीपर बैठे हुए नाट्य–मन्दिरमें झाँक रहा था। अधिक तो मैं नहीं आता, किन्तु कभी–कभी झाँक लेता हूँ और क्या हरिकथा होती है, इस जिज्ञासासे थोड़ी–बहुत हरिकथा भी सुनता हूँ। अतः जब मैंने झाँका तो देखा कि कुछ प्रतिशत श्रोता आँखे मूँदकर सिर झुकाये हुए थे, कुछ प्रतिशत कभी इधर तो कभी उधर देख रहे थे, कुछ प्रतिशत श्रोता वक्ताकी ओर तो देख रहे थे, किन्तु रुचि–रहित होकर और कुछ प्रतिशत श्रोता भलीभाँति कथा सुन रहे थे।

अन्य स्थानोंमें वक्ता मिर्च–मसाला लगाकर कथाएँ कहते हैं। किन्तु यहाँपर शुद्ध हरिकथाएँ होती हैं, इसलिये लोगोंको इन कथाओंमें रुचि ही नहीं होती। यदि श्रद्धाके साथ श्रवण करेंगे, तभी कुछ समझ पायेंगे, अन्यथा नहीं।

इस श्लोकमें 'नृप गाढ़कर्णः' का अर्थ है—अत्यन्त तृष्णाके साथ, अत्यन्त भूख और प्यासके साथ, मानो प्रत्येक शब्दको हम कानोंके द्वारा पी रहे हों—ऐसा कथा–श्रवण होना चाहिये। उससे क्या होगा? ऐसे श्रोताकी भूख–प्यास, दुःख–क्लेश इत्यादि जो भी व्याधियाँ होंगी, वे सभी दूर हो जायेंगी, समाप्त हो जायेंगी और उसके हृदयमें तत्व–ज्ञान,

सम्बन्ध–ज्ञान, साधन–भक्ति, उसके बाद भाव–भक्ति और फिर प्रेम–भक्ति भी स्वतः प्रकाशित हो जायेगी। यदि कोई साधक अन्य किसी भी भक्तिके अङ्गका पालन न भी करे, केवल हरिकथाओंका श्रवण मात्र ही करता रहे और उन कथाओंको, कथा–वाचकोंको, कथाके स्थानको, जिस ग्रन्थसे कथा हो रही हो—उस ग्रन्थको और कथा–श्रोताओंको भी, श्रद्धाके साथ भूमिपर गिरकर प्रणाम करता रहे और उनके गुणोंका वर्णन करता रहे, तो वह साधक जहाँ भी होगा, वहींसे अजित भगवान्‌को जीत लेगा।

यह भी बतलाया गया है कि कुछ लोग चित्तवृत्तिका निरोध करनेके लिए घोर परिश्रम करते हैं, शास्त्रोंके प्रचुर अध्ययनमें लगे रहते हैं। उनके द्वारा यह सब[भगवान्‌को जीत लेना सम्भव]नहीं होगा। होम, संयम, इत्यादिके द्वारा, और यहाँ तक कि तीर्थ–पर्यटनके द्वारा भी यह नहीं होगा।

[उदाहरणके लिए] प्रतिदिन गिरिराज गोवर्धन, मथुरा अथवा वृन्दावनकी परिक्रमाके नियमवाले कुछ लोग हरिकथाके समय भी परिक्रमा करते हैं। अन्य कुछ लोग तो जब यहाँ हरिकथा हो रही होती है, उसी समय यहाँपर ठाकुरजीकी परिक्रमा करते हैं। यद्यपि उनकी ठाकुरजीमें कुछ रुचि है, किन्तु हरिकथामें रुचि नहीं। अतः उनके द्वारा दस–बीस जन्मों तक की गयी परिक्रमाके फलस्वरूप उनमें हरिकथाके प्रति कुछ रुचि आयेगी या नहीं, यह भी ठीक नहीं है—यह समझ रखो। हरिनाम और हरिकथाके प्रति रुचि होना, यह सब जन्म–जन्मान्तरकी सुकृतियोंका फल है। मन्दिर परिक्रमा करना क्या है? मात्र सुकृतिको पुष्ट करना है। किन्तु जहाँपर भक्तिके साक्षात् अङ्गका पालन किया जा रहा हो, हरिकथाका कीर्तन–श्रवण किया जा रहा हो, वहाँ सुकृति पुष्ट करनेसे कितना उन्नत और अधिक फल हो जायेगा। किन्तु, श्रवण भी यथार्थमें होना चाहिए। यदि अत्यन्त श्रद्धाके साथ कथा सुनी ही नहीं, तब तो परिक्रमा करना ही अच्छा है। कुछ नहींसे तो कुछ ही अच्छा है।

ज्ञानेप्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्त्ताम्।

(श्रीमद्भा॰ १०/१४/३)

यहाँ 'सन्मुखरितां'का क्या अर्थ है? सम्यक् रूपसे मुखरित। वे साधु हमपर बड़ी कृपा करके हरिकथाओंको कहते हैं। किन्तु साधु भी शुद्ध साधु होना चाहिए तथा वह रसिक और भावुक भी होना चाहिए। यदि वैसा [उन्नत] साधु नहीं है, तो मध्यम अधिकारी भी कम नहीं है; उसकी हरिकथाको भी सुन सकते हैं। जो अपने अनर्थोंको दूर करनेका प्रयास कर रहे हैं, ऐसे लोगोंका सङ्ग भी लाभकारी है।

'स्थानेस्थिताः'–चाहे वह श्रोता गृहस्थ, त्यागी, उपकुर्वाण [जो ब्रह्मचारी ग्रहस्थ होनेका इच्छुक हो], नैष्ठिक–ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, स्त्री, पुरुष, कर्मी, ज्ञानी, योगी अथवा कोई भी हो, यदि वह निरन्तर उस हरिकथाका पूर्व–वर्णित पद्धतिके अनुसार सेवन करता रहे, तो उसका अधिकार एवं उस अधिकारके अनुसार उस हरिकथा–सेवनका फल आगे बढ़ता चला जायेगा।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर कहते हैं कि यदि वह श्रोता श्रद्धालु है और हरिकथाका आदर करता है, तो वह सर्वप्रथम कथा–स्थलीको और तत्पश्चात् कथा–वाचकको प्रणाम करेगा। वह उस हरिकथाको उद्देश्य करके उसकी महिमाका इस प्रकार गुणगान करेगा कि, "अहो! संसारसे उद्धार करनेवाली एकमात्र यही हरिकथा है। इस हरिकथासे ही कृष्ण–प्रेम हो सकता है, और कहीं नहीं होगा।" वह इस प्रकार वर्णन करेगा कि, "अहो! इनकी कथा कितनी सुन्दर है! यह स्थान कितना महिमाशाली है कि यहाँपर भगवान्‌की लीलाकथाओंका

"भगवान् हरिकथाके माध्यमसे साधकके हृदयमें प्रवेश करके वहाँ जितनी भी मलिनता है, उस सबको दूर करके तथा उसके हृदयको शरत्–ऋतुके जलकी भाँति सम्पूर्णता निर्मल बनाकर उसमें अपने प्रेमको उत्पन्न कर देते हैं, अतएव सबकुछ हरिकथाके श्रवणसे ही हो जायेगा।"

वर्णन किया जा रहा है!" वह पुनः–पुनः श्रोताओंको इस प्रकार लक्ष्यकर प्रणाम करेगा कि, "ये लोग धन्य हैं जो ऐसी हरिकथाएँ सुनते हैं!" इस प्रकार वह सभीको प्रणाम करेगा।

अथवा 'स्थानेस्थितां' कोई किसी भी वर्ण या आश्रममें, अर्थात् विवाहित, अविवाहित, त्यागी, ग्रहस्थ इत्यादि किसी भी अवस्थामें एवं जहाँ कहीं भी हो, यदि वह वहींसे इनका (उपरोक्त हरिकथा, श्रोता इत्यादिका) आदर करता है, तथा यद्यपि उसे अभी भगवत्–प्राप्ति नहीं हुई है, तथापि वह ऐसी 'सन्मुखरित' हरिकथाएँ, जो श्रुतिगतां'—उसके कानोंमें आयीं, उन्हें सुनता हुआ और 'तनुवाङ्मनोभि'—उनका तन, मन और देहके द्वारा आदर करता हुआ ही, 'जीवन्ति'—केवल अपना जीवन धारण करता है, तो क्या होगा? 'यें प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्',—कुछ समयके बाद अजित भगवान् तत्क्षण ही उसके वशीभूत हो जाएँगे। कैसे? भगवान् हरिकथाके माध्यमसे उसके हृदयमें प्रवेश करके वहाँ जितनी भी मलिनता है, उस सबको दूर करके तथा उसके हृदयको शरत्–ऋतुके जलकी भाँति सम्पूर्णता निर्मल बनाकर उसमें अपने प्रेमको उत्पन्न कर देते हैं; [अतएव] सबकुछ हरिकथाके श्रवणके द्वारा ही हो जायेगा। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुरने बहुत सुन्दर रूपसे इसका वर्णन किया है।

इसलिए हरिकथाके समय सबकुछ छोड़कर हरिकथा श्रवण करो। जहाँ वक्ता श्रोतासे उन्नत वैष्णव न हो, वहाँ हरिनाम करते हुए कुछ हरिकथा सुन सकते हैं। किन्तु यदि वक्ता हमसे उन्नत वैष्णव हों और उनकी कथामें शिक्षाकी बातें हों, तो उनकी कथाके समय हरिनाम करना भी छोड़ दो, अन्यथा ठीकसे श्रवण नहीं हो पायेगा। उस समय एकाग्र चित्त होकर हरिकथाको सुनो। उस समय परिक्रमा इत्यादि जो कुछ नियम हैं, सब छोड़ दो। परिक्रमा करो, किन्तु कब? अलगसे समय निकालकर करो। 'अभी हरिकथा नहीं हो रही, हरिनाम करते हुये परिक्रमा कर लूँ।' गिरिराज गोवर्धनकी परिक्रमा कर सकते हैं, वे प्रेम देनेवाले हैं। वृन्दावन धामकी परिक्रमा करनेसे प्रेम उदित होता है। यमुनाजीको श्रद्धाके साथ प्रणाम करनेसे, उनमें स्नान करनेसे, उनकी स्तव–स्तुति इत्यादि करनेसे प्रेम उदित होता है। ये सब करना चाहिये, किन्तु हरिकथाके समय नहीं, उस समयको छोड़कर। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक हरिकथाका सेवन करनेवाला व्यक्ति उन भगवान्को जय कर लेता है जो तीनों लोकोंमें अजित हैं।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण
गोस्वामी महाराजके पत्रामृत

तुम्हारा जीवन भार न होकर सर्वप्रकारसे सुखमय एवं सार्थक हो

(पत्र—५)

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
पो. मथुरा (उ. प्र.)
ता. २/२/८६

स्नेहभाजनीया बेटी मधु!

मेरा स्नेहाशीष ग्रहण करना। तुम्हारा स्नेहसिक्त भावपूर्ण पत्र पढ़कर गद्‌गद् हो गया। आँखें छलछला आयीं। तुम्हारी अन्तर-वेदनाकी आँचने मेरे हृदयको भी तरल कर दिया।

बेटी! तुम्हारे प्रिय सदैव तेरे निकट अति समीप ही हैं। तेरे आत्मीय-स्वजन तुमसे कदापि दूर नहीं हैं, न कभी दूर हो सकते हैं। तुम पगली न बनो। तुम सदैव युगल किशोर-किशोरीका स्मरण करना। वे कभी भी अपने निजजनोंको भूलते नहीं हैं। जबतक उसे अपने प्रेमके अनुरूप नहीं बना लेते, उसके सारे अनर्थोंको दूर नहीं कर देते, तबतक कुछ छुपेसे रहते हैं। उसे विरहकी अग्निसे तपाते रहते हैं। इस प्रीतिके उच्च सिद्धान्तको जगत्‌में प्रकाशित करनेके लिये ही श्रीकृष्णके बाह्यतः व्रज और व्रज-स्थित गो-गोवत्स, गोप एवं गोपियोंको छोड़कर मथुरा-द्वारका जाने पर भी उनका हृदय कभी भी व्रजसे बाहर नहीं गया। उद्धव जैसे कृष्णके निजजन भी प्रेमके इस निगूढ़ भावको केवलमात्र आंशिक रूपसे ही समझ सके थे।

रही मेरी बात, तो मैं तुम्हें भला कैसे भूल सकता हूँ अथवा तुमसे दूर कैसे रह सकता हूँ। सर्वदा तुम्हारा स्मरण बना रहता है। मेरे गुरुवर्ग एवं श्रीललिता-विशाखा और श्रीरूपमञ्जरी आदि तुम्हारे प्रति अहैतुकी कृपा करें। तुम उनकी कृपासे श्रीमद्भागवतके निगूढ़ एवं श्रीनारद आदि प्रेमी भक्तोंके लिये भी परम-दुर्लभ गोपी-प्रेम एवं श्रीराधा-दास्यसे अभिषिक्त होओ। तुम दुःखी मत होना। तुम्हारा मनोबल वज्रकी भाँति सुदृढ़ हो। जीवन भार न होकर सर्वप्रकारसे सुखमय एवं सार्थक हो। मनुष्य जन्म तो देवताओंके लिये स्पृहणीय है। उसे पाकर उसे सार्थक बनाना हमारा लक्ष्य होना चाहिये। आशा है तुमको कुछ सान्त्वना मिलेगी। यदि ऐसा हो सका तो आनन्दकी बात होगी।

'अखिल भारतीय खण्डेलवाल महासभा'ने तुम्हारे शोधग्रन्थ पर तुम्हें ताम्र-पत्र एवं शॉल भेंट देनेकी घोषणाकी है—जानकर प्रसन्नता हुई। साथ ही तुम्हें 'खण्डेलवाल महिला जागृति'का सेक्रेटरी चुना गया है—यह भी आनन्दकी बात है। यदि महिलाओंके हृदयमें भागवद्-भक्तिका—कृष्णप्रेमका विशुद्ध बीज रोपण कर सको तो उनका यथार्थ कल्याण कर सकती हो। इसके लिये प्रयास करना। सामाजिक कुसंस्कारोंसे, सामाजिक उत्पीड़नसे उठकर महिलाएँ दया, परोपकार, सत्पंथपरता, वात्सल्य-भाव आदि भारतीय प्राचीन संस्कृतिके अनुरूप सद्गुणोंसे विभूषित होकर सीता, सावित्री, द्रोपदीके समान बन सकें—ऐसा प्रयास कर सको तो अच्छा है।

आज कुछ महिलाएँ एवं पुरुष पश्चिमी संस्कृतिसे प्रभावित होकर प्रतिशोधकी भावनासे एक दूसरेके विरुद्ध प्रतिद्वन्द्वी दलके समान कलह करते हैं। पुरुषों और महिलाओंको प्रीतिके सूत्रमें बाँधनेका प्रयास करके उन-दोनोंमें भक्तिभाव लानेकी चेष्टा ही सर्वोत्तम है।

बहुत कुछ लिख गया। हम लोग मठवासी भगवत्कृपासे कुशल हैं। मथुरामें विशालरूपमें श्रीचैतन्य महाप्रभुका पञ्चशती समारोह आयोजन होने जा रहा है। निमन्त्रण पत्र छपने पर भेजूँगा।

तुम्हारा नित्यमङ्गलाकाङ्क्षी

Swami B.V. Narayan

—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

—सम्पादकीय निवेदनः श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाके सहृद पाठकोंसे विनम्र निवेदन है कि यदि आपमें-से किसीके पास श्रील गुरुदेव—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके द्वारा हिन्दी अथवा बङ्गला भाषामें लिखित पत्र हैं, तो कृपया उस पत्र//पत्रों को scan करवाकर अथवा उनकी स्पष्ट photo लेकर bhagavata.patrika@gmail.com पर e-mail करें या ७८९५९३९३१६ no. पर whatsapp करें। हम श्रील गुरुदेवके द्वारा आपको भेजे गए पत्रोंको श्रीश्रीभागवत-पत्रिकामें क्रमशः प्रकाशित करेंगे।

सारस्वत-गौड़ीय-वैष्णव एवं चरणाश्रितजन प्रदत्त पुष्पाञ्जलि

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके चरणोंमें प्रणति पुष्पाञ्जलि

—श्रीमद्भक्तिवैभव सागर महाराज
(श्रीरुद्रद्वीप, श्रीमायापुर)

वर्तमान युगमें पाश्चात्य शिक्षासे तृप्त समाज जब शुद्ध सनातन वैष्णवधर्मको मूर्ख, अनभिज्ञ, अन्धविश्वासी और नीच लोगोंका धर्म कहकर वैष्णव-दर्शनके प्रति नाक सिकोड़ रहा था, जब समाजने बहिर्मुखता, नास्तिकता, देहात्मबोधमय स्मार्ताचार, चित्-जड़ समन्वयको धर्मके रूपमें ग्रहणकर आत्मवञ्चनाके पथपर चलना आरम्भ कर दिया, जब वैष्णव-धर्मके नामसे विभिन्न प्रकारके उप-सम्प्रदाय, अप-सम्प्रदाय, व्यभिचार, लम्पटता, बनियागिरि, कामुकता, मूर्खताके ताण्डव नृत्यमें और व्यर्थके प्रजल्पमें जगत्के लोगोंने अमङ्गलको मङ्गल मानकर इसके परिणामको भुगतना आरम्भ कर दिया था, तभी तथाकथित भ्रान्त-पथसे शुद्ध वैष्णव-धर्मकी रक्षा करनेके लिए भगवान्के अन्तरङ्ग पार्षद, शुद्धभक्ति-प्रवाहके भगीरथ श्रील भक्तिविनोद ठाकुर और उनके अभिन्न प्रकाश-विग्रह श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जगत्में आविर्भूत हुए एवं परवर्ती आम्नाय-परम्परामें प्रकट हुए नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज।

जगद्गुरु श्रील प्रभुपादने कहा है—कर्मी, ज्ञानी, योगी, अन्याभिलाषी एवं अदैव स्वभावके लोक-वञ्चक व्यक्ति कदापि जगद्गुरु पदवाच्य नहीं हैं। तब जगद्गुरु कौन हैं? जो सात्वत शास्त्रोंका अनुक्षण कीर्तन करते हुए प्रचार करते हैं, जो श्रीगौरसुन्दरके अतिमर्त्य भावोंसे विभावित मूर्ति या प्रकाश-विग्रह हैं, जो प्रेम-प्रचारक और पाषण्ड-दलनकारी श्रीनित्यानन्दके अभिन्न-तनु तथा ऐकान्तिक कृष्णभक्तिके शिक्षक हैं, वे ही जगद्गुरु हैं। जो शत प्रतिशत कृष्णभजनके अकैतव (निष्कपट) आदर्शमें अनुप्राणित हैं, जिनके प्रत्येक कार्य, कथा, विचार, सिद्धान्त अकैतव कृष्णानुशीलनकारी हैं, वे ही जगद्गुरु हैं। जिनकी वाणीमें रूप-रघुनाथका पदरज-अभिषेक प्रकाशित है, जिनकी वाणीमें आम्नाय तरङ्गिणी प्रवाहित है, वे ही वास्तव जगद्गुरु हैं।

तब इस जगत्में क्या साधारण गुरु या लौकिक गुरुका कोई मूल्य नहीं है? इस जगत्के साधारण गुरुगण हमें मरणधर्मसे बचा नहीं सकते, इसलिए उनका आंशिक गुरुत्व ही है। किन्तु जिन्होंने मरणधर्मसे हमारी रक्षा की है, हमें नित्यत्वका अनुभव दिया है, वे ही पूर्ण और नित्यगुरु हैं। संशय-निवृत्तिके लिए उन्होंने कृपापूर्वक इस जगत्में अवतरित होकर हमारे समस्त संशयोंको निवृत किया है।

हमें सदैव भगवत् कृपाकी ही प्रार्थना करनी चाहिए। श्रीचैतन्यदेवकी वाणी क्या थी? उन्होंने महावदान्यलीला प्रकाशित की थी। अस्पताल खोलकर शरीरके प्रति दया करनेकी बात उन्होंने नहीं कही है अथवा मानसिक रोग या तनावके समाधानके लिए किसी प्रकारकी चेष्टाको नहीं दिखाया है। कई

लोग flood relief, plague relief आदि कार्योंको ही दया मानते हैं। इन सभी असुविधाओंका मूल कारण है—भगवान्‌से विमुखता। इसलिए हम जो भी कार्य करेंगे, वह कृष्णसे सम्बन्धित होना चाहिए। साधारण लोग सोचते हैं कि 'साधुगण relief नहीं दे रहे हैं, अथवा स्कूल, कॉलेज, अस्पताल आदि स्थापन कुछ भी नहीं करते। इनका social work क्या है? गौड़ीय मठका कहना है—श्रीव्यासदेवने श्रीमद्भागवतमें relief दिया है। यदि कोई श्रीव्यासदेवके relief में सञ्चारित हो जाय, तो उसे फिर बार-बार relief लेना नहीं पड़ेगा।

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः।
निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥

(भ.र.सि.पूर्व २/२५५)

श्रील प्रभुपादने कहा है—

(१) निर्मल चेतन शरीरके द्वारा अधोक्षज कृष्णकी सेवा करनेपर हमें जागतिक भोगबुद्धिजनित स्वामी-स्त्रीके सम्बन्धकी असारतामें समय नष्ट नहीं करना पड़ेगा।
(२) श्रीकृष्णका पुत्ररूपमें पालन करनेपर बहिर्मुख संसार नहीं करना पड़ेगा।
(३) श्रीकृष्णकी सख्य-रसमें सेवा करनेपर इस जगत्‌में श्मशान बान्धवोंकी आवश्यकता नहीं होगी।
(४) श्रीकृष्णकी नौकरी या गुलामी करनेपर जगत्‌का प्रभुत्व कमानेके लिए मायाकी नौकरी नहीं करनी पड़ेगी, क्योंकि जीवमात्रका Final Goal है—कृष्णप्रेम।

उपरोक्त उपदेशोंकी चाभी श्रीगुरुदेवके पास है। इसलिए जगद्‌गुरु श्रील प्रभुपादने सन् १९३५ ई॰ सितम्बर मासकी साप्ताहिक गौड़ीय, संख्या १३में उल्लेख किया है—"श्रीगुरुदेव साक्षात् भगवान्‌से किसी अंशमें कम नहीं हैं। गुरु और वैष्णव अप्राकृत श्रीमन्दिर हैं। उस श्रीमन्दिरमें भगवान् विराजित हैं। वे गुरु और वैष्णवके मध्य ही आत्मप्रकाश कर वास करते हैं। भगवद् भक्तका दर्शन होनेपर ही भगवद् दर्शन प्राप्त होता है। भगवद् भक्तका दर्शन न होने तक भगवान्‌का दर्शन प्राप्त नहीं होता है, अर्थात् भक्तिका आरम्भ ही नहीं होता। कारण—गुरु ही श्रीकृष्णके चरणकमलोंके साथ सम्बन्ध-प्रदानकारी हैं।"

श्रील प्रभुपादने अपनी पत्रावलीमें लिखा है—"भगवान्‌से पत्र प्राप्त नहीं होता है। हमारा संवाद भी भगवान्‌के निकट नहीं पहुँच पाता है। परन्तु भगवद् भक्तके माध्यमसे हमारा संवाद भगवान्‌के निकट पहुँच जाता है एवं हम भी भगवद् भक्तके माध्यमसे भगवान्‌का संवाद प्राप्त करते हैं।" इसलिए श्रीकृष्ण अपने सबसे श्रेष्ठ सेवकको जगत्‌में प्रेरण कर सर्वाधिक करुणाका प्रदर्शन करते हैं। उस करुणा-शक्तिके मूर्त्त प्रकाश-विग्रह हैं—श्रीगुरुपादपद्म। ऐसे श्रीगुरुपादपद्मकी कृपाशक्तिका आश्रय करके भी भगवान्‌को नहीं जान पानेके कारण है—भगवद् विमुखता। हमारा हृदय जड़-अभिमानसे ग्रस्त होकर कठिन पत्थरके समान हो जाता है। इस पत्थरके स्तरको भेद न कर पानेपर चेतनाका उन्मेष किस प्रकार होगा? पत्थरके स्तरको भेद करनेके लिए छेनी और बारूदकी आवश्यकता है। अर्थात् यदि हमें इस जड़ाभिमानके चङ्गुलसे रक्षा पानी है, तो साधुसङ्गरूप छेनी और भगवत्-सेवारूप बारूदके द्वारा हमारे हृदयके जड़ाभिमानरूप कठिन चट्टानके स्तरको भेदना होगा। गुरु-वैष्णवोंका सङ्ग करते-करते हमारे अनर्थ और असत् चिन्ताएँ विदूरित होनेपर हमारा हृदय विगलित होकर (पिघलकर) शुद्ध होगा। तभी हमारे हृदयमें चिद् अभिमान या सेवक अभिमान जाग्रत होगा।

गुरुपूजा केवल व्यवहारिक प्रथा नहीं है। गुरुदेवकी महिमा जाननेसे पहले उनको बिना किसी विचार करते हुए जानना आवश्यक है—इसीका नाम आनुगत्य है। गुरुदेवके आनुगत्यको केन्द्रमें रखते हुए हमें जानना होगा कि हम जिनकी पूजा करनेके लिए

उपस्थित हुए हैं, वे कौन हैं? उनके साथ हमारा क्या सम्बन्ध है? मैं क्यों उनकी पूजा करूँगा? शास्त्रीय विचारोंके आधार पर उसे जानना होगा। यदि हम कहते हैं कि अमुक जिलेमें अमुक गाँवमें उनका जन्म हुआ है, तो क्या यह उनका यथार्थ परिचय है? नहीं। वे तो गोलोक वृन्दावनसे आये हैं। गोलोक वृन्दावनके परिचयके माध्यमसे ही गोलोककी सम्पदका परिचय कराया जाएगा। और गोलोककी सम्पदका यथार्थ रूपसे परिचय प्राप्त करनेके लिए साधकको साधनाकी आवश्यकता है। साधकके अन्तरके अन्तःस्थलकी भावप्रवण चिन्ताधारा यदि गुरुदेवकी भावधाराको स्पर्श करती है, तब वहीं पर श्रीगुरुदेवका यथार्थ परिचय होगा।

श्रीगुरुदेव क्यों इस मर्त्य भूमिपर आते हैं? श्रीराधामाधवकी जो अनन्त माधुर्यलीला नित्यकालसे चल रही है, जिस लीलाका प्रारम्भ और समाप्ति नहीं है, उस नित्यलीलामें जीवको संयुक्त करनेके लिए भगवान् ही गुरुके रूपमें जगत्में उतरकर आते हैं, अथवा अपने परिकरोंको जगत्में भेजते हैं। गुरु मर्त्यलोकके भोगपिपासु जीव नहीं हैं। वे श्रीभगवान्के अभिन्न प्रकाश-विग्रह हैं। वे क्यों आते हैं? इस त्रिताप-दग्ध संसारके-मायाबद्ध जीवको लीला-पुरुषोत्तम श्रीगोविन्दके चरणोंमें लौटा ले जानेके लिए ही वे आते हैं। एक ओर वे अनन्त जगत्के सेवा-सम्भारको स्वीकार कर रहे हैं, दूसरी ओर वे गुरुरूपमें जगत्के मङ्गलके लिए मन्त्र-दीक्षा एवं हरिनामका उपदेश कर रहे हैं। यह गुरुका स्वरूप है। एक ओर वे आचार्य हैं, दूसरी ओर वे अनन्त विश्वके नायक हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद गुरुतत्त्वके विषयमें कहते हैं—'माधुर्यलीला गुणरूपनाम्नां प्रतिक्षणास्वादन लोलुपस्य'। इस विषयमें मुझे एक बात स्मरण हो रही है। श्रीमन्महाप्रभुके चरणोंमें जब श्रीरायरामानन्द साध्य-साधन तत्त्वकी चर्चा कर रहे थे, तब श्रीमन्महाप्रभुने कहा—'पढ़ श्लोक साध्येर निर्णय।' तब रायरामानन्दने प्रेमभक्तिकी भूमिकामें आकर कहा—'इस भक्तिको केवलमात्र जीव अपनी साधनाके द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता। इसको प्राप्त करनेके लिए—तत्र लौल्यमपि मूल्यमेकलं जन्मकोटि सुकृतैर्न लभ्यते।' अर्थात् प्रत्येक जीवमें ऐसी भक्तिको प्राप्त करनेकी लालसा आनी चाहिए। ऐसी लालसा कब आती है? जब शिष्य प्रणत और शरणागत चित्तसे गुरुमुखसे भगवान्की अनन्त माधुर्य मण्डित लीलाकथाका श्रवण करता है, वह कथा उसकी समस्त वासनाओंका विनाश कर उसके अन्तर हृदयमें भक्ति-प्राप्तिकी तीव्र लालसाको जगा देती है। यह लालसा ही भक्तको जीवन-साधनाकी अन्तिम भूमिकामें पहुँचा सकती है। अन्यथा कविराज गोस्वामीकी भाषामें 'कोटि जन्म करे यदि श्रवण कीर्तन। तथापि ना कृष्णपदे पाय प्रेमधन॥' अनन्त जीवन तक साधना करने पर भी साध्यवस्तुकी प्राप्तिकी कोई सम्भावना नहीं है। कारण—भक्ति भगवान्की ह्लादिनी शक्तिकी वृत्ति है। वृत्तिका अर्थ है—स्वभाव। स्वभाव ही भक्ति है। पुनः भक्तिका अन्य अर्थ है—सेवा। अर्थात् कृष्णस्वरूपकी सेवा करना ही जीवकी स्वरूप-शक्तिकी वृत्ति है। यही वृत्ति जगत्में श्रीगुरुके रूपमें उतर कर आती है। अर्थात् भगवान्की ह्लादिनी शक्ति ही गुरुके रूपमें अवतरित होती हैं एवं जीवको भगवान्की सेवाके विषयमें शिक्षा देती हैं। इसलिए 'प्रतिक्षणास्वादन लोलुपस्य' अपने स्वरूपमें श्रीगुरु नित्य आस्वादनके लिए लुब्ध हैं। भगवान्के माधुर्यमय आस्वादनके लिए गुरुदेवके हृदयमें तीव्र लालसा है। वे अपनी गम्भीर भूमिकामें प्राणाराध्य देवको सुखी करनेके लिए नित्य तत्पर रहते हैं। गुरुदेवका यह आदर्श ही शिष्यके जीवनमें आना आवश्यक है।

गुरुसेवाके द्वारा ही शिष्यको आत्मशक्ति, आत्मबल और अध्यात्म-चेतना प्राप्त होती हैं। आत्मबल किस प्रकार प्राप्त होता है? भोग-लालसाका त्यागकर गुरुसेवाके द्वारा ही शिष्यको आत्मबल प्राप्त होता है। हम उस आत्मशक्तिके प्रदानकारी गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजका आविर्भाव शतवार्षिकी उत्सव मना रहे हैं। उनका जीवन-चरित्र, आदर्श, प्रचार, भूमिका आदिके विषयमें विशेषरूपसे चर्चा करना मैं कर्तव्य मानता हूँ। आज उन आत्मशक्ति, आत्मबल प्रदानकारी रूपानुगवरका आविर्भाव शतवार्षिकी उत्सव है। आज हमें विचार करनेकी आवश्यकता है कि कर्मी, ज्ञानी, योगियोंके अवदान एवं रूपानुगगणके अवदानमें क्या अन्तर है?

ज्ञानिगणोंका क्या अवदान है? शङ्कराचार्यने कहा है—'क्षणमिह सत्सङ्ग ... भवार्णव तरणे।' उन्होंने पहले वेदका स्थापन किया। इसलिए श्रीमन्महाप्रभुने शङ्कराचार्यको आचार्य शङ्करकी उपाधि दी है। उन्होंने कहा है—'पुनरपि जननम् पुनरपि मरणम्, पुनरपि जननी जठरे शयनम्। इह संसारे बहुदुस्तारे, कृपयाऽपारे पाहि मुरारे॥' इतना बोलकर उन्होंने कहा है—'भज गोविन्दं, भज गोविन्दं।' अर्थात् जन्म-मृत्यजनित स्रोतका अवरोध करो, शान्ति मिलेगी। यही है ज्ञानियोंका मुक्ति-आनन्द। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इन दो शब्दोंकी व्याख्यामें उन्होंने कहा है—'नित्य-अनित्यका विवेका जिसको हुआ है, जिसे अनित्य वस्तुओंके प्रति वितृष्णा है, जिसे शम-दम-तितिक्षादि गुण प्राप्त हुए हैं, वे ही ब्रह्मवस्तुका अनुशीलन करेंगे।' शमका अर्थ है अन्तर इन्द्रियका संयम, दमका अर्थ है बाह्य इन्द्रियोंका संयम। तितिक्षाका अर्थ है सहनशीलता गुणयुक्त एवं जगत्के ऐश्वर्यमें विस्तारित ज्ञान। यदि कोई इन गुणोंसे युक्त होते हैं, तो वे ब्रह्मजिज्ञासा करेंगे। यह शङ्कराचार्यका अवदान है। पुनः देखनेकी बात है कि ज्ञानीगण भगवान्का आकार स्वीकार नहीं करते हैं। श्रीभगवान्ने कहा है—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

(गीता ६/४७)

यहाँ 'युक्ततम'का क्या अर्थ है? हे अर्जुन, जो लोग श्रद्धापूर्वक मेरा भजन करेंगे, वे दुर्लभ हैं। इनके विषयमें शास्त्रमें कहा गया है—

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्॥

(श्रीमद्भा.११/२/२९)

इनका जो भगवत् दर्शन है, वैसा दर्शन दुर्लभ है। क्यों दुर्लभ है? ज्ञानीगण, योगीगण, कर्मीगण भगवान्के ऐसे दर्शनसे वञ्चित हैं। कर्मी कहते हैं—यह जगत् सर्वस्व है, ज्ञानी कहते हैं—ब्रह्म सर्वस्व हैं, योगी कहते हैं—कैवल्यमुक्ति ही सर्वस्व है। ब्रह्ममें मिलकर विलीन हो जाओ। किन्तु कविराज गोस्वामीकी भाषामें—श्रीमन्महाप्रभु प्रश्न कर रहे हैं रायरामानन्दसे कि 'भुक्ति मुक्ति वाञ्छा जेइ काँहा दोहार गति?' रायरामानन्दने उत्तर दिया—'स्थावर देह, देवदेह जैछे अवस्थिति।' (चै.च.मध्य ८/२५७) [अर्थात् श्रीमन्महाप्रभुने पूछा—जिनमें भोग और मुक्तिकी कामना है, उन दोनों प्रकारके लोगोंकी कैसी गति है? रायरामानन्दने उत्तर दिया—मुक्तिकामी लोग अचल वृक्षादि योनियोंको प्राप्त करते हैं और भोगपिपासु व्यक्ति देवता देहको प्राप्त करते हैं।]

परन्तु हमारे गुरुवर्गने क्या कहा है? तुमलोग रसमय वस्तुकी वाञ्छा करो। वह वस्तु हैं श्यामसुन्दर।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६/२२)

जिनको प्राप्त करने पर अन्य कोई प्राप्य वस्तु श्रेष्ठ नहीं लगेगी, जिसमें स्थित होनेपर दुःसहनीय

दुःखसे भी विचलित नहीं होंगे, उस रसमय वस्तुकी इच्छा करो। उस रसमय वस्तुकी उपासनाके द्वारा तुम विलास आनन्द प्राप्त करोगे, दुर्लभ वस्तु प्राप्त करोगे।

हमारे गुरुवर्गका एक विशेष परिचय है कि ये रूपानुग हैं। ये रूपानुग भक्तिद हैं। यह जगत्में दुर्लभ है। ये श्यामसुन्दरको सर्वस्व नहीं मानते हैं, यही इनकी विशेषता है। इनकी भावना है—'भजामि राधां अरविन्दनेत्राम्'—कमलनयना श्रीराधाका मैं भजन करता हूँ। 'वदामि राधां करुणाभराद्राम्'—उन करुणामयी श्रीराधाकी महिमाका मैं कीर्तन करता हूँ। 'स्मरामि राधां मधुरस्मितास्याम्'—मधुर स्मितहास्यवाली श्रीराधाका मैं स्मरण करता हूँ।

एक समय कृष्ण गोवर्धनमें रास कर रहे थे। उन्हें श्रीराधाजीका सङ्गसुख आस्वादन करनेकी इच्छा हुई। तब वे हठात् रासस्थलीसे अदृश्य हो गये। अन्तमें पैंठा गाँवमें जाकर चतुर्भुज मूर्ति रूपसे अवस्थान करने लगे। कोटि-कोटि गोपियाँ श्यामसुन्दरको ढूँढने लगीं। पथपर चलते-चलते चतुर्भुज मूर्तिका दर्शन कर वे कहने लगीं—'हे नारायण! श्यामसुन्दरके चरणकमलोंमें हमारी मति अविचल रहे।' ऐसा कहकर वे कृष्णको ढूँढने चली गयीं। श्रीकृष्णने इस प्रकार कोटि-कोटि गोपियोंकी वञ्चना की। चतुर्भुज नारायण लक्ष्मीदेवीको आकर्षित करने पर भी गोपियोंको आकर्षित नहीं कर सके। अब श्रीकृष्णने देखा कि वृषभानुनन्दिनी आ रही हैं। उनकी अङ्गकान्ति जब श्रीकृष्णके नेत्रगोचर हुई तथा श्रीकृष्णकी अङ्गगन्ध श्रीराधिकाकी नासामें प्रविष्ट हुई, श्रीराधाजीके श्रीकृष्णके सम्मुख आते ही सैंकड़ो चेष्टा करने पर भी श्रीकृष्ण अपना चतुर्भुज रूप धारण नहीं कर सके। वे तत्क्षणात् द्विभुज मुरलीधर रूपमें प्रकटित हो गए। अतः ये जो श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज हैं, ये हमारा साधारण व्यक्तियोंके साथ सम्बन्ध स्थापन करानेके लिए नहीं आये थे। ये वृषभानुनन्दिनीके परिकर हैं। यदि हम उनके आविर्भाव दिवसका पालन करते हैं, तो ब्रह्मादि देवताओंके लिए भी दुर्लभ वृषभानुनन्दिनीका दासीत्व हम प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न हो सकता है कि वृषभानुनन्दिनीका दासीत्व पाकर हमारा क्या लाभ होगा? रूपानुग धाराकी विशेषता है कि रूपानुगजन कृष्णको वशीभूत कर पाते हैं। यह किस प्रकार सम्भव है? श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। आनन्द अंशको पृथक् करने पर क्या रहा? सत् और चित्। आनन्द पृथक् हो गया। साँपके सिरसे मणिको अलग कर देनेपर साँप मणिके लिए उन्मत्त हो जाता है। जिस स्थानपर मणिका सन्धान मिलता है, वहाँ दौड़कर जाता है। उसी प्रकार श्यामसुन्दरसे ह्लादिनी शक्तिको पृथक् करनेके कारण, जहाँपर ह्लादिनीका सम्बन्ध है, वहाँ श्यामसुन्दर वशीभूत हो जाते हैं—यही मूल कारण है।

आज श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके शुभ आविर्भाव शतवार्षिकी उत्सवपर भूमिपर पतित होकर उनके श्रीचरणकमलोंमें दण्डवत् प्रणाम निवेदन करता हूँ। वे वृषभानुनन्दिनीकी माधुर्य महिमाका कीर्तन करते-करते तन्मय हो जाते थे। उनके श्रीमुखसे सुना था—"दूसरोंके विचारमें श्रीकृष्णकी राधा हैं। परन्तु रूपानुगजनोंके विचारमें श्रीराधाके कृष्ण हैं।" यहाँ पर प्रमाणित हुआ—प्रेम, प्रीति और प्रणयका आनन्द सत्यकी पोशाकसे आवृत है। और इस सत्यका सम्पूर्ण दर्शन होता है अप्राकृत प्रेमके प्लावन-क्षेत्र श्रीराधाकुण्डमें, और उसका पूर्ण प्रतिफलन प्राप्त होता है श्रीमन्महाप्रभुकी विरहोन्माद गम्भीरा-लीलामें।

ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी आविर्भाव-शतवार्षिकी पर उनके श्रीचरणोंमें पुष्पाञ्जलि

श्रीमद्भक्तिप्रणत मुनि महाराज
(श्रीसारस्वत गौड़ीय आसन, पुरी)

मैंने श्रील भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, श्रील भक्तिवेदान्त वामन महाराज एवं श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजके विषयमें सुना था कि ये श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके अत्यन्त योग्य एवं प्रिय शिष्य तथा श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तीन स्तम्भ स्वरूप हैं। किन्तु, मैं इच्छा करने पर भी इनके दर्शन नहीं कर पाता था, क्योंकि कि मैं अपने मठकी सेवाओंमें व्यस्त रहता था तथा मेरा बाहर प्रचारमें भी जाना नहीं होता था। परवर्त्ती कालमें जब श्रील नारायण महाराज पुरीमें मठ करनेके उद्देश्यसे सिंहानिया प्रभुके घरपर आये थे, उस समय मैं वहाँ गोशालामें दूध लेने जाता था। मैं दूरसे ही श्रील नारायण महाराजको प्रणाम किया करता था, उनके निकटमें नहीं जा पाता था। कारण-मैं सोचता था कि श्रील महाराजजी तो भजनशील हैं, मैं निकटमें जाकर क्या कहूँगा, कुछ भी तो नहीं जानता। किन्तु, एक दिन श्रील महाराजजीने कृपा करके मुझे अपने निकटमें बुलाया। यह बहुत अच्छा हुआ और इसे मैंने अपना सौभाग्य माना। श्रील महाराजजी द्वारा मुझे बुलानेका कुछ विशेष कारण था। उस समय हमारे मठमें कुछ असुविधाएँ चल रही थीं, इसलिये मुझे देखकर महाराजजीने हमारे मठके विषयमें जिज्ञासा करनेके लिये मुझे बुलाया था। श्रील महाराजजी की यह इच्छा थी कि वह हमारे मठकी असुविधाओंका समाधान करनेके लिये कुछ सहायता करें, क्योंकि मेरे गुरु महाराज श्रीश्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजजीने भी श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके अप्रकटके पश्चात् श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ-गौड़ीय वेदान्त समितिमें सब लोगोंकी एक साथ मिलकर गुरुसेवा करनेकी व्यवस्था करनेमें सहायता की थी।

इसके पश्चात् श्रील महाराजजी जब पुनः पुरी आये तो द्वितीय बार उनसे वार्तालाप हुआ। श्रील महाराजजीने मुझसे कहा कि मेरी इच्छा है कि आपके गुरु महाराज द्वारा प्रकाशित 'किरण-बिन्दु-कणा' (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित श्रीउज्ज्वलनीलमणि किरण, श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु बिन्दु, श्रीभागवतामृत-कणा) का मैं हिन्दी भाषामें अनुवाद करूँ। क्या आपके पासमें ये तीनों ग्रन्थ हैं? मैंने महाराजजीसे कहा कि मैं निश्चित रूपसे तो नहीं कह सकता, किन्तु यदि ये ग्रन्थ उपलब्ध होंगे तो मैं कल अवश्य ही ले करके आऊँगा। अगले दिन जब मैंने उन ग्रन्थोंको लाकर श्रील महाराजजीको दिया तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् महाराजजीने उन ग्रन्थोंका हिन्दीमें अनुवाद करके प्रकाशित भी करवाया। फिर पुनः पुरी आने पर एकदिन श्रील महाराजजीने मुझसे कहा, "मुनि महाराज! मुझसे एक भूल हो गई है। मैंने ये ग्रन्थ आपके गुरु महाराजके ग्रन्थोंसे अनुवाद किये हैं, इसलिये उनका नाम देना उचित था। किन्तु, इन ग्रन्थोंके अति शीघ्रतापूर्वक प्रकाशन हेतु उनके नामका उल्लेख करना रह गया। अगली बार पुनः

प्रकाशित करने पर उनका नाम अवश्य उल्लिखित करूँगा।" मैंने कहा कि महाराजजी यह आपके ऊपर निर्भर है, आप जैसा भी करना चाहें।

हमारे गुरु महाराजके अप्रकट होनेके पश्चात् जब हमारे मठमें कुछ मामला-मुकद्दमा हुआ तो श्रील वामन गोस्वामी महाराजके आश्रित गौर प्रभुने हमारे मठके विरोधी पक्षका समर्थन किया। इसे जानकर श्रील महाराजजी गौर प्रभुपर क्रोधित होकर बोले कि तुम मठमें रहनेवाले व्यक्तिका पक्ष न लेकर मठके बाहर रहनेवाले व्यक्तिका पक्ष लेते हो। कुछ समय पश्चात् नीलाचल गौड़ीय मठमें उत्सवका आयोजन हुआ, तब गौर प्रभुने हमें निमन्त्रण दिया। किन्तु मैं गया नहीं। यह जानकर श्रील महाराजजीने किसीके माध्यमसे मुझे सन्देश भिजवाया कि मुनि महाराजको कहना कि नारायण महाराजने निमन्त्रण दिया है, एक साथमें प्रसाद पायेंगे। तब मैं अत्यधिक आनन्दित हुआ। यद्यपि एक साथमें प्रसाद पानेका सौभाग्य तो नहीं मिला, तथापि वहाँ पर मैंने महाराजजीसे कहा कि मेरा एक प्रश्न है। आप ही हमारे बड़े हैं, मैं आपके अतिरिक्त और किससे प्रश्न करूँ? मैंने जिज्ञासा की, "श्रील प्रभुपादके समयमें गौड़ीय कण्ठहारमें देखा जाता है कि 'आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयः' श्लोकके रचयितामें 'चक्रवर्ती ठाकुर' का नाम लिखा था, किन्तु, आजकलके समयमें गौड़ीय कण्ठहारमें उसी श्लोकके रचयिताके नाममें 'श्रीनाथ चक्रवर्ती ठाकुर' लिखा जाता है। क्या श्रीनाथ चक्रवर्ती ठाकुर और श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर एक ही व्यक्ति नहीं हैं?" श्रील महाराजजीने कहा, "नहीं, ये दोनों अलग-अलग व्यक्ति हैं। यह श्लोक श्रीनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने लिखा है।"

एक समय श्रील महाराजजी एक सुहृदकी भाँति हमारे मठके मामला-मुकद्दमाके सम्बन्धमें कुछ वार्तालाप करने हमारे मठमें आये थे, किन्तु मैंने महाराजजीसे उस विषयमें वार्तालाप करनेसे मना कर दिया। बादमें मुझे अनुभव हुआ कि इस विषयमें मेरा अपराध हुआ है। तब मैं श्रील महाराजजीसे भेंट करने नीलाचल गौड़ीय मठमें गया, उस समय वे पाठ कर रहे थे। कथाके पश्चात् मैंने जब उन्हें प्रणाम किया तो मुझे प्रतीत हुआ कि श्रील महाराजजीके मनमें कुछ भी बात नहीं है। मैंने उनसे क्षमा प्रार्थना करते हुए कहा, "महाराजजी! जाने-अनजानेमें मेरा यदि कुछ अपराध हुआ हो तो आप उसे क्षमा कर दीजिए।" यह सुनकर श्रील महाराजजीने कहा, "मुनि महाराज, ऐसा कभी भी नहीं कहना, हमारा द्वार आपके लिये सब समय खुला है, यदि भविष्यमें कोई भी आवश्यकता हो तो निसंकोच हमारे पास आ जाना।"

जब श्रील महाराजजी अप्रकटलीलासे पूर्व अस्वस्थ-लीला प्रकाशित करते हुए पुरीमें अवस्थान कर रहे थे, तब मैं उनके दर्शन करनेके लिये श्रीदामोदर गौड़ीय मठ, चक्रतीर्थमें गया था। उस समय उनकी अस्वस्थ-लीलाके कारण उनसे साक्षात्कार करना सम्भव नहीं था। किन्तु जब मैंने उनके सेवकसे अनुरोध किया तो वह मुझे श्रील महाराजजीके कक्षमें ले गये। मैंने महाराजजीको प्रणाम किया। तब उन भक्तने मेरा परिचय देते हुए कहा, "गुरुदेव, सारस्वत गौड़ीय आसनसे श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजके चरणाश्रित मुनि महाराज आये हैं।" श्रील महाराजजीने अस्वस्थ होनेके कारण कुछ समयके पश्चात् दो बार उल्लेख करते हुए कहा, "सिद्धान्ती महाराज! सिद्धान्ती महाराज! हम लोगोंको बाँध दिये थे।" मैंने कहा, "महाराजजी! आप स्वस्थ हो जाइये। मेरी जगन्नाथजीसे यही प्रार्थना है। यदि आप चले गये तो हमारा गौड़ीय गगन खाली हो जायेगा। एक-एक करके श्रील त्रिविक्रम महाराज, श्रील वामन महाराज सभी चले गये हैं। आप शीघ्र ही स्वस्थ हो जायें।" तब उनको प्रणाम करनेके पश्चात् मैं वहाँसे चला आया।

कुछ दिनोंके पश्चात् श्रील महाराजजीके अप्रकट होनेपर उन्हें समाधिके लिये नवद्वीप ले जाते समय श्रीजगन्नाथजीके दर्शनके लिये उनकी गाड़ीको सिंहद्वारके पास लाया गया, तब मैं भी वहाँ पर किसी कार्यसे आया था। श्रील महाराजजीको गाड़ीकी बीचवाली सीट पर बिठाया गया था, महाराजजीके दर्शन करके मैंने उनको प्रणाम किया। उनके दर्शन करके मैं समझ नहीं पाया कि वह अप्रकट हो गये हैं। बादमें मुझे भक्तोंसे ज्ञात हुआ कि वह अप्रकट हो गये हैं।

श्रील नारायण महाराजजीने शिक्षा एवं शासनके द्वारा अनेक भक्तोंको प्रशिक्षित किया, जिस कारण वे भक्तजन इतनी सुन्दर हरिकथा कह पाते हैं। एक समय श्रील महाराजजीके चरणाश्रित श्रीशुभानन्द प्रभु (श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज)ने नीलाचल गौड़ीय मठमें रस-विचारके सम्बन्धमें सुन्दररूपसे हरिकथा की। उसे श्रवण करके मुझे अनुभव हुआ कि महाराजजी किस प्रकार स्नेह एवं शासनसे भक्तोंको प्रशिक्षित करते हैं। एक समय मेरे गुरुभ्राता श्रीरसानन्द प्रभु (श्रीभक्तिवेदान्त श्रीधर महाराज) ने मुझसे कहा, "मुनि महाराज, जिस प्रकार आप मेधावी हैं, यदि आप श्रील महाराजजीके पास रहकर शिक्षा ग्रहण करते तो सम्पूर्ण विश्वमें महाप्रभुकी वाणीका प्रचार करके गुरुवर्गकी सेवा कर पाते।" यह सुनकर कर मैंने कहा कि इस जन्ममें तो मुझे इतनेमें ही सन्तुष्ट होना पड़ेगा।

आज श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी आविर्भाव शतवार्षिकीके उपलक्षमें इन्हीं कुछ स्मृतियोंके द्वारा उनके श्रीचरणोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पित करता हूँ, वे प्रसन्न होकर मुझपर अहैतुकी कृपा वर्षण करें।

ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी आविर्भाव-शतवार्षिकी-तिथिके उपलक्ष्यमें उनके श्रीचरणमलोंमें आशीर्वाद प्राप्ति हेतु प्रार्थना-

श्रीपाद नवीनकृष्ण प्रभु
(श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठ, वृन्दावन)

मेरे श्रीगुरुपादपद्म भगवान्के अभिन्न प्रकाशविग्रह स्वरूप सम्बन्ध-ज्ञान प्रदाता नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंस ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजजीके श्रीचरणकमलोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ और उनकी अहैतुकी कृपाकी प्रार्थना करता हूँ। मेरे शिक्षा-गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंस ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके चरणकमलोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ और उनकी अहैतुकी कृपाकी प्रार्थना करता हूँ।

मेरे ज्येष्ठ गुरुभ्राता अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी आदरनीय-वन्दनीय-आशीर्वाद-सूचक शतवार्षिकी-आविर्भाव-तिथिपर उनके श्रीचरणकमलोंमें आशीर्वाद प्राप्ति हेतु प्रार्थना करता हूँ।

श्रीमन्महाप्रभु जगत्के जीवोंको उन्नत-उज्ज्वलरस युक्त 'स्वभक्तिश्रियम्' को प्रदान करनेके लिये इस

जगत्में अवतीर्ण हुए थे। फिर परवर्त्ती कालमें इसी वस्तुको देनेके लिये जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादजीका आविर्भाव हुआ। आज इस जगत् को यह जो श्रीमन्महाप्रभु द्वारा अर्पित रस वस्तु प्राप्त हुई है, इसका एकमात्र कारण श्रील प्रभुपाद हैं। इसी परम्परामें अन्यतम हमारे ज्येष्ठ गुरुभ्राता श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने भी उस 'अनर्पितचरीं चिरात्' वस्तुको जगत् में विपुलरूपसे वितरित किया है।

हमने श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीके जिस प्रकारके वैराग्यके सम्बन्धमें श्रवण किया है, उसी प्रकारका वैराग्य हमें श्रील महाराजजीके जीवनमें भी देखनेको मिला है। श्रील महाराजजी भजन-अनुरागी और व्रजधाम-निष्ठ वैष्णव थे। वे मथुरामें रहते समय समस्त ब्रह्मचारियोंके साथ शास्त्र-चर्चा करके शिक्षा द्वारा उनको तैयार करते थे और उनका मातृवत पालन करते थे। जगद्गुरु श्रील प्रभुपादने हमारे गुरुपादपद्मको 'Volcanic Energy' की उपाधि प्रदान की थी, ठीक इसी प्रकारसे श्रील महाराजजीने अपनी साधन-प्राप्त वस्तु [राधा-दास्यं] जो 'Volcanic Energy' की भान्ति उनके अन्तर हृदयमें विद्यमान थी, उसे प्रस्फुट ज्वालामुखीकी भान्ति विश्ववासियोंको प्रदानकर विश्वको प्लावित किया है।

पूज्यपाद महाराजजीकी वैष्णव-सेवामें महान रुचि थी और उन्होने श्रील प्रभुपादके आश्रितजन हमारे गुरुवर्गकी सेवा की है। हमारे गुरुवर्गके अप्रकट होनेपर हम सभी लोगोंने श्रील महाराजजीके निकट आश्रय ग्रहण किया। जो भी साधक उनके पास प्रश्न लेकर जाते थे, वे उसका सुन्दररूपसे समाधान करके उस भक्तको सन्तुष्ट कर देते थे।

श्रील महाराजजीने गौड़ीय मठके सिद्धान्तोंकी सदैव रक्षा की है। जब बाबाजी सम्प्रदायने गौड़ीय मठके सिद्धान्तों-विचारों यथा—गौड़ीय मठमें गेरुआ वस्त्र क्यों देते हैं, सन्यास क्यों देते हैं, इनकी कोई परम्परा नही है, इत्यादि प्रकारसे निन्दा-आलोचना की, उस समय श्रील महाराजजीने 'प्रबन्ध-पञ्चकम्' नामक ग्रन्थ लिखकर शास्त्रीय प्रमाणोंके आधारपर सभी प्रश्नोंके उत्तर दिये। इस ग्रन्थके प्रकाशित होनेपर कतिपय बाबाजी एवं उनके अनुयायी गौड़ीय मठके विरुद्ध कोर्टमें केस करनेके लिये भी तैयार हो गये। किन्तु फिर उन्होने सोचा कि हम लोग इतने बड़े सम्प्रदायसे जीत नही सकते हैं, अतः उन्होंने कोर्ट केसके विचारको छोड़ दिया। श्रील महाराजजीने एक सतम्भके समान गौड़ीय मठके विचारोंकी रक्षा करते हुए इस ग्रन्थको लिखा है। गौड़ीय मठके लिये यह उनका बहुत बड़ा अवदान है, जिसे हम कभी भूल नही सकते हैं। भविष्यमें हमारे गौड़ीय मठके सिद्धान्तोंपर कोई प्रश्न नही उठा सकता, अतः मैं इस ग्रन्थके लिये श्रील महाराजजीका बहुत आभारी हूँ।

श्रील महाराजजी श्रीलरूप गोस्वामीकी वाणीके कुशल वाहक थे। एक बार मैं श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठमें श्रीरूप गोस्वामीकी तिरोभाव-तिथिके अवसरपर उपस्थित था। उस समय श्रील महाराजजी कहने लगे कि मैं रूपानुग विचारको सारे विश्वमें प्रचार करना चाहता हूँ। श्रील महाराजजी एक बात बोलते थे कि—कृष्णलीलामें श्रीरूपमञ्जरीमें श्रीलरूप गोस्वामी नही हैं, परन्तु श्रीमन्महाप्रभुके पार्षद श्रीरूप गोस्वामीमें श्रीरूपमञ्जरी हैं।

श्रीवृन्दावन धाममें एक अवसरपर श्रील महाराजजीने 'आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयः' श्लोक पर विचार व्यक्त किये जिसे सुनकर मुझे ज्ञात हुआ कि महाराजजीका शास्त्रोंमें कितना गम्भीर प्रवेश है। उन्होनें इस श्लोकका अर्थ बताते हुए कहा, "ब्रजके बाहर ऐश्वर्य भावसे भगवान् की आराधना होती है। कृष्णके लिए भगवान् शब्द ब्रजके बाहर प्रयुक्त होता

है, ब्रजमें कृष्ण भगवान् नहीं हैं। ब्रजगोपीयोंके लिये कृष्ण उनके प्राण प्रियतम हैं, सखाओंके बन्धु हैं, यशोदा मइयाके लाला हैं। ब्रजभावमें जो माधुर्य है, वह ब्रजके बाहर कहीं नही मिलेगा। ब्रजमें रहकर कृष्णको भगवान् मानकर चिन्तन किया तो फिर ऐश्वर्य भाव आ जायेगा। इस भावसे व्रजप्रेम प्राप्त नहीं होगा।" ऐसा अद्भुत और सूक्ष्म विचार मैंने पहले कभी नही सुना था।

श्रील महाराजजीके आदर्श जीवनचरित्रमें बहुत बड़ी महानता रही उनकी सतीर्थ-प्रीति और चरणाश्रितजनोंके प्रति शुद्ध-वात्सल्य। उनकी इस सतीर्थ-प्रीति और शुद्ध-वात्सल्यसे हमने गौड़ीय वेदान्त समितिको एक भवनकी भान्ति खड़ा होते हुए देखा है। उन्होने सबको प्रीतिकी रस्सीसे बाँध कर रखा हुआ था। उन्होने इसी सतीर्थ-प्रीति और वात्सल्यसे पूज्यपाद श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीके शिष्योंको सेवामें लगाया। वे किसीको समितिसे बाहर जाने नही देते थे और सदैव समितिमें रहकर सेवा करनेके लिये प्रेरित करते थे। पूज्यपाद श्रीभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी उदारता और पूज्यपाद श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी शुद्ध सतीर्थ-प्रीति और वात्सल्यके कारण गौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा सम्पूर्ण विश्वमें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका सुष्ठुरूपसे प्रचार हुआ है। इस प्रचारकार्यमें श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीका बहुत बड़ा अवदान है। अपने गुरुपादपद्मकी महिमाको उन्होंने सारे विश्वमें प्रचारित और स्थापित किया है, ये उनकी अद्भुत एवं अविस्मरणीय गुरुसेवा है।

आज मैं श्रील महाराजजीके श्रीचरणोंमें प्रार्थना करता हूँ कि उनके शतवार्षिकी-आविर्भाव-तिथि और वर्षमें उनके चरणाश्रितजनोंके द्वारा जो आयोजन किये गये हैं, इसके लिये वे अपने चरणाश्रितजनोंपर सदैव आशीर्वाद वर्षण करतें रहें और हमपर भी अहैतुकी कृपा वर्षण करें, जिससे हमारी भी भजन करनेमें रुचि वर्धित हो।

जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी आविर्भाव-शतवार्षिकी पर इस दासाधमकी श्रद्धाञ्जलि

—श्रीपाद भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज(कोलकाता)

वर्तमान सन् २०२१ में मेरे शिक्षागुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी शुभाविर्भाव-शतवार्षिकीका उद्यापन हो रहा है। इस उपलक्ष्यमें उनके प्रिय सेवकोंमें विविध प्रकारकी सेवाओंके द्वारा—समग्र विश्वमें विभिन्न स्थानों पर धर्म-सभाओंके माध्यमसे उनके अप्राकृत गुण-वैशिष्ट्यका प्रचार, पत्र-पत्रिकाके माध्यमसे उनके अप्राकृत चरित्र-गुणावलीका वर्णन, Audio-Video-Zoom के माध्यमसे उनका प्रचार-कार्य, हरिकथाएँ, श्रीधाम-परिक्रमा आदि जनसाधारणके समक्ष प्रस्तुत करनेके लिए एक अनोखा प्रयास दृश्य

हो रहा है। इस शतवार्षिकी प्रचार अभियानमें मेरे समान अयोग्य साधारण सेवकके योगदान देनेकी चेष्टा 'बन्दरके चाँद पकड़नेके' समान अत्यन्त हास्यास्पद है। फिर भी उन सेवक-भक्तोंके आदेशसे एवं '(गुरु) वैष्णवेर गुणगान, करिले जीवेर त्राण, जा'ते हय वाञ्छित पूरण'—इस महाजन-वाणीको सिरपर धारणकर (स्वीकारकर) अपने आत्मकल्याणके लिए श्रील महाराजजीकी कुछ महिमा कीर्तन करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तीन स्तम्भोंमें-से एक थे। वेदान्त समितिके विषयमें चर्चा करने पर मेरे श्रीगुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज और श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजके प्रसङ्गका अवश्य ही उल्लेख होता है। कारण—इन तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) की उत्तम परिचालना एवं तत्त्वावधानमें श्रीसमिति पत्र, पुष्प और फलोंसे लद गयी थी। श्रील गुरु महाराज दीक्षा देकर भगवान्‌की सेवाके लिए पात्र संग्रह करते थे, श्रील नारायण गोस्वामी महाराज उन लोगोंको उपयुक्त शिक्षा देकर भगवत्-सेवाके उपयोगी बना देते थे तथा श्रील त्रिविक्रम महाराज अपनी कठोर और सुतीक्ष्ण वाणी (उपदेशों) से उनके दुष्पार माया-बन्धन और अनर्थादिका छेदन करते हुए हरिभजनका पथ सुगम कर देते थे।

श्रील नारायण गोस्वामी महाराज वैष्णवके तथा महाभागवतके समस्त सद्‌गुणोंसे विभूषित थे। भगवान्‌के समान वे भी परदुःखदुःखी, सेवकवत्सल और भक्तवत्सल थे। जीवके दुःखका मूल कारण है भगवत्-विस्मृति। परदुःखकातर श्रील महाराजजी विश्वके प्रायः सभी देशोंमें श्रीचैतन्यवाणीका प्रचार करते हुए त्रिताप-ग्रस्त जीवोंको कृष्ण-उन्मुख करनेमें तत्पर थे। उनके श्रीमुखसे वीर्यवती हरिकथाका श्रवणकर बहुतसे व्यक्ति उनके उच्च भजनादर्शसे अनुप्राणित होकर उनके सान्निध्यमें श्रीहरिभजन करनेके लिए प्रयासी हुए।

श्रील महाराजजी एक ऐसे व्यक्तित्वके अधिकारी थे कि उनको देखने पर सेवकगण भयभीत हो जाते थे। यहाँ तक कि उनके सतीर्थ संन्यासी गुरुभ्रातागण भी उनके सम्मुख बात करनेमें संकोच करते थे। परन्तु वास्तवमें वे 'वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि' वाक्यके मूर्त-विग्रह थे। ऊपरसे वे वज्रके समान अत्यन्त कठोर लगने पर भी उनका अन्तर फूलसे भी कोमल, शिशुके समान सरल था। उनके कोमल हृदयमें जो स्नेहामृतका समुद्र विराजमान था, उनके सान्निध्यमें आये व्यक्तिमात्र ही उसका अनुभव कर अभिभूत हो जाते थे।

श्रील नरोत्तम दास ठाकुरने वैष्णवोंकी महिमाका कीर्तन किया है—'गङ्गार परश हइले पश्चाते पावन। दर्शने पवित्र कर एइ तोमार गुण॥' गङ्गाके स्पर्शके बिना जीव पवित्र नहीं हो सकता, परन्तु वैष्णवके (महाभागवतके) दर्शनमात्रसे ही जीव पवित्र हो जाता है। पुनः कहा गया है—'जाँहार दर्शने मुखे आइसे कृष्णनाम। ताँहारे जानिह तुमि वैष्णव-प्रधान॥' श्रील महाराजजीके दर्शनमात्रसे ही बहुतसे सौभाग्यवान् व्यक्ति माया-बन्धनको छिन्नकर उनके प्रति आकर्षित होकर हरिभजनमें नियुक्त हुए हैं। अतः वे वैष्णव-प्रधान थे, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है एवं इस विषयमें किसी संशयका भी अवकाश नहीं है।

श्रील महाराजजीने देश-विदेशमें सर्वत्र ही अपने चरणाश्रित भक्तोंको यह निर्देश दिया था कि जयध्वनि देते समय भक्तगण उनके (श्रील नारायण गोस्वामी महाराजके) नामके साथ-साथ उनके ज्येष्ठ

गुरुभ्रातादृय—श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज एवं श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजके नामोंकी जयध्वनि अवश्य ही देंगे। "मेरे दोनों ज्येष्ठ गुरुभ्राताओंके प्रति आदर-सम्मान प्रदर्शन करने पर ही मैं आपलोगोंका मेरे प्रति सम्मान स्वीकार करूँगा। उन दोनोंके प्रति किसी भी प्रकारके असम्मानको मेरा असम्मान ही समझना। इसके अतिरिक्त आपलोग उन दोनोंकी आविर्भाव और तिरोभाव तिथियोंका आदर और यत्नपूर्वक अवश्य ही पालन करना।" श्रील महाराजने स्वयं ही देश-विदेशमें उक्त तिथियोंका पालन करते हुए अपने आचरणसे चरणाश्रितजनोंको शिक्षा दी है। आज सर्वत्र श्रील महाराजजीके चरणाश्रितजन उनके इस आदेशका निष्ठापूर्वक पालन कर रहे हैं। इस प्रकार श्रील महाराजजीने ज्येष्ठ सतीर्थद्वय (गुरुभ्रातादृय) के प्रति अपना जो अटूट सम्बन्ध, विशेष सम्मान प्रदर्शन और मर्यादाकी रक्षा की है, उसको वे स्पष्टरूपसे अपने चरणाश्रितजनोंको समझाकर गये हैं।

श्रील महाराज जिस प्रकार श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-सेवामें समर्पित थे, ठीक उसी प्रकार हरिकथाके माध्यमसे सेवकोंको हरि-गुरु-वैष्णव-सेवामें उत्साहित और प्रेरित करते थे। सेवाकार्यमें उत्साही सेवकोंपर वे सदैव दृष्टि रखते थे एवं सेवाकार्यके लिए आवश्यक द्रव्यादि प्रदानकर उनका उत्साह-वर्धन करते थे। हरिभजनके लिए आग्रही सभीको वे हरिभजनका अवसर प्रदान करते थे। कौन किस मठसे आया है, किसका शिष्य है—इसे देखना आवश्यक नहीं समझते थे। वे समग्र विश्वमें असंख्य शिष्य-प्रशिष्य और अनुरागी भक्तोंके निवास-स्वरूप थे। अपना-पराया, शत्रु-मित्रका प्रभेद भूलकर सभीको अपनाकर आश्रय प्रदान करना तथा ब्रजरसधाराका सिञ्चन कर उन लोगोंको अपने अभीष्टके चरणकमलोंमें नियुक्त करना ही उनका मूल लक्ष्य था।

श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा और श्रीब्रजमण्डल-परिक्रमा एवं नगर-संकीर्तन आदि उनके प्राणस्वरूप थे। अपने प्रकटकालमें वे प्रति वर्ष परिक्रमामें योगदान देते थे तथा नेतृत्व प्रदान करते थे। परिक्रमाके समय वे दोनों भुजाओंको प्रसारितकर स्वयं उद्दण्ड नृत्य करते थे एवं सभीको नृत्य करनेके लिए उत्साह प्रदान करते थे। परिक्रमामें योगदान करनेवाले यात्रियोंके लिए रहनेकी तथा प्रसाद आदिकी समुचित सुव्यवस्था न कर पानेके लिए दुःख प्रकाश करते थे एवं आनेवाले वर्षोंमें और भी अधिक यात्रियोंको लानेके लिए निवेदन करते थे। उनके उस हृदयस्पर्शी और निःस्वार्थ निवेदनसे उपस्थित यात्रीगण अपनेको धन्यातिधन्य मानते थे एवं विभिन्न सांसारिक प्रतिकूलताएँ रहने पर भी प्रति वर्ष परिक्रमामें योगदान करते थे। श्रीब्रजमण्डल परिक्रमाके समय दामोदर व्रतमें 'श्रीराधाकृपाकटाक्ष-स्तोत्रम्' 'श्रीनन्दनन्दनाष्टकम्', 'श्रीदामोदराष्टकम्' और 'रमणी शिरोमणि वृषभानुनन्दिनी' आदि स्तव-स्तुति और कीर्तनोंका वे स्वयं कीर्तन करते थे तथा उपस्थित सभीसे कराते थे। तब वहाँ किस प्रकारके अभूतपूर्व परिवेशकी सृष्टि हो जाती थी, परिक्रमाकारी भक्तोंने उसका अवश्य ही हार्दिक अनुभव किया होगा। सन् २००३ में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिमें भिन्न-मत और विशृंखला दिखायी दी। सन् २००४ में श्रील महाराजजी श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमामें योगदान करनेके लिए आये, परन्तु परिस्थिति प्रतिकूल देखकर क्रन्दन करते-करते मथुरामें लौटनेके लिए बाध्य हुए। उनके जीवनकालमें उस वर्ष श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमामें प्रथम बार विराम लगा था। किन्तु उन्होंने मथुरा लौटकर वहाँके भक्तोंको साथ लेकर श्रीधाम नवद्वीप-परिक्रमाके उद्देश्यसे श्रीब्रजमण्डल-परिक्रमा की। उसके अगले वर्ष श्रीधाम नवद्वीपमें पृथक् मठका स्थापन करते हुए जीवनके अन्तिम दिन तक आड़म्बरके साथ विधिपूर्वक उन्होंने श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमाकी परिचालना की।

श्रील महाराजजी श्रीमती वृषभानुनन्दिनीके एकान्त प्रियजन थे। वे सदैव श्रीमती राधारानीकी महिमा तथा उन्नत-उज्ज्वल रसकी कथाका प्रचार करते थे। श्रीनवद्वीप-धामकी परिक्रमाके समय समुद्रगढ़में उनके एवं श्रील त्रिविक्रम महाराजके मध्य श्रीराधाकृष्णके लीलारसका आस्वादन करनेके लिए एक अभिनव पन्था (नवीन परिपाटी) को हमने लक्ष्य किया है। श्रील महाराजजी समुद्रसेनका पक्ष लेकर श्रीमती राधारानीकी और ब्रजगोपियोंकी श्रेष्ठताको प्रतिपादित करते थे, जब कि श्रील त्रिविक्रम महाराज भीमसेनका पक्ष लेकर 'श्रीकृष्ण ही मूल हैं'—इसे प्रमाणित करनेकी चेष्टा करते थे। किन्तु अन्तमें श्रील महाराजजी शास्त्रीय युक्ति और तत्त्वसिद्धान्तोंके आधारपर श्रीराधारानी ही सर्वश्रेष्ठ हैं—इसको स्थापन करते थे।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी भाषामें—

वृषभानुसुता, चरण-सेवने,
हइब जे पाल्यदासी।
श्रीराधार सुख, सतत साधने,
रहिब आमि प्रयासी॥

श्रीराधार सुखे, कृष्णेर जे सुख,
जानिब मनेते आमि।
राधापद छाड़ि, श्रीकृष्ण-सङ्गमे,
कभु ना हइब कामी॥

सखीगण मम, परम सुहृत्,
युगल-प्रेमेर गुरु।
तदनुगा हये, सेबिब राधार,
चरण-कलपतरु॥

राधापक्ष छाड़ि, जे जन से जन,
जे भावे से भावे थाके।
आमि त राधिका-, पक्षपाती सदा,
कभु नाहि हेरि ताके॥

श्रील महाराजजी इस वाणीके मूर्त-प्रतीक थे।

श्रील महाराजजीने श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीके प्रचार, ब्रजगोपियों और ब्रजवासियोंकी महिमाके प्रचार, ब्रजमण्डलके अन्तर्गत विभिन्न भग्नप्राय श्रीमन्दिर और श्रीकृष्णलीलाकी स्मृतियोंकी रक्षामें अपनेको उत्सर्ग किया था। उनके इस प्रचार-अभियानसे और ब्रजमण्डलकी प्राचीन स्मृतियोंकी रक्षासे सन्तुष्ट होकर उनको 'वास्तव ब्रजवासी' निर्धारित करते हुए ऊँचागाँव स्थित विद्वत्-मण्डलीने उनको 'युगाचार्य' की उपाधिसे विभूषित किया था।

पूर्वचार्योंके पदाङ्कका अनुसरण करते हुए एवं अपने श्रीगुरुपादपद्मके आदेशसे उन्होंने बङ्ग-भाषामें रचित बहुत गौड़ीय ग्रन्थोंको, गोस्वामी ग्रन्थोंको सहज-सरल हिन्दी भाषामें अनुवादपूर्वक प्रकाशित किया। संस्कृतसे अनभिज्ञ लोगोंको जिससे शास्त्रीय सिद्धान्त समझमें आ जाए, इसके लिए उन्होंने दिन-रात परिश्रमकर श्रीगुरुवर्गकी वाणी और भगवान्‌की महिमाका प्रचार किया है। हिन्दी भाषामें मासिक 'श्रीभागवत-पत्रिका' का प्रकाशन कर उन्होंने हिन्दीभाषी लोगोंमें श्रीमन्महाप्रभुके सम्बन्धमें, शुद्ध भागवतधर्मका एवं गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायकी शुद्ध विचारधाराका प्रचार और प्रसार किया है।

अन्तमें श्रील महाराजजीके अभयचरणकमलोंमें मेरी अहैतुकी प्रार्थना है कि वे मुझपर अमायिक कृपा करें जिससे उनके आदर्शित, प्रदर्शित और निर्देशित पथका अनुसरण करते हुए सम्पूर्ण जीवनको श्रीहरि-गुरु-वैष्णव सेवाके द्वारा उनके अभीष्टदेवकी सेवामें आत्मनियोग कर सकूँ।

जय श्रील नारायण गोस्वामी महाराजकी जय!

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज आविर्भाव-शतवर्ष वन्दनम्

श्रीपाद भक्तिवेदान्त विष्णु महाराज (हरिद्वार)

सर्वप्रथम श्रीमन् नित्यानन्द अभिन्न स्वरूप सम्बन्धज्ञान प्रदाता परमाराध्यतम गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके श्रीचरणसरोजमें यह अधम दास अनन्त कोटि दण्डवत् प्रणाम निवेदन करते हुए उनकी अहैतुकी कृपाकी वाञ्छा कर रहा है।

सर्वप्रथम हमें यह जाननेकी आवश्यकता है कि गुरु कौन हैं? उनका स्वरूप क्या है? श्रील गुरुदेव जगत्में क्या वस्तु प्रदान करने आते हैं?

गुरु कौन हैं?

कृष्ण, गुरुद्वय, भक्त, अवतार, प्रकाश।
शक्ति-एइ छयरूपे करेन विलास।।

(चै.च आदिलीला १/३२)

भगवान् श्रीकृष्ण—कृष्ण, दो प्रकारके गुरु (दीक्षा एवं शिक्षा गुरु,), भक्त, अवतार, प्रकाश और शक्ति इन छः स्वरूपोंमें नित्य विलास करते हैं।

यद्यपि मेरे गुरु श्रीचैतन्य महाप्रभुके दास हैं, तथापि मैं उनको श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रकाशके रूपमें दर्शन करता हूँ। इस वचनका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे श्रीगुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके पावन चरितामृतमें देखनेको मिलता है। इसीलिए श्रीगुरुको भगवान् का शक्त्यावेश अवतार भी कहा जाता है।

श्रील गुरुदेवके अगणित गुणोंमें-से किञ्चित् गुणोंका दिग्दर्शन-

श्रील गुरुदेव अनन्त अप्राकृत गुणोंके भण्डार थे। जैसा कि शास्त्रमें बताया गया है—श्रीकृष्णके प्रायः सभी गुण वैष्णवोंमें विद्यमान रहते हैं। उन गुणोंकी गणना करना असम्भव है, अतः हम लोग केवल दिग्दर्शन ही कर सकते हैं।

कृष्ण भक्ते कृष्णर गुण सकल संचारे।
सेई सब गुण हय वैष्णव-लक्षण।
सब कहा न याय करि दिग्दर्शन।।

(चै.च. मध्यलीला २२/७४)

कृपालु—श्रील गुरुदेवकी विशेष महिमा यह है कि वे बड़े कृपालु थे। पात्र-अपात्र, योग्य-अयोग्य, विद्वान-मूर्ख, धनी-दरिद्र, कर्मी-योगी, ज्ञानी आदिका विचार न कर सभीको अपनी शरणमें रखते थे और अपने मठोंमें स्थान देकर समस्त शास्त्र सिद्धान्त सिखाकर कृष्णभक्तिका दान देते थे। कभी भी अपना-पराया भेद नहीं रखते थे। सन्तका स्वभाव 'वसुधैव कुटुम्बकम्' होता है।

श्रीमन्महाप्रभुका एक नियम था कि उन्होंने वैष्णव निन्दा करनेवालोंके अतिरिक्त इस जगतमें सभी जीवोंको कृष्णप्रेम प्रदान किया। किन्तु महाभागवत होनेके कारण श्रील गुरुदेवका किसीके भी प्रति ऊँच-नीच, शत्रु-मित्र भेदभाव नहीं था। अत्यन्त कृपालु और दयालु होनेके कारण वे निन्दा करनेवाले

व्यक्तियोंको भी सुधारकर कृष्णसेवामें लगा देते थे। श्रील गुरुदेव 'अमन्द दया' करनेवाले और 'अदोषदर्शी प्रभु' थे।

एक बार लगभग १९९४-९५में श्रीधाम वृन्दावन स्थित श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठके किसी मठवासी भक्तने श्रीलगुरुदेवसे किसी अन्य मठवासीकी शिकायत करते हुए कहा कि यह ब्रह्मचारी ठीक नहीं है, सेवा नहीं करता, किसीकी बात नहीं मानता, सारा दिन निन्दा-चुगली करके एक-दूसरेमें लड़ाई-झगड़ा करवाता है। इसलिए महाराजजी आप इसको मठसे निकाल दीजिये, मठके लिए बहुत अच्छा होगा। तब श्रील गुरुदेव बोले-"देखो! दोष देखकर किसीको निकाल देना बहुत सहज है, किन्तु दोषोंको न देखकर उसे भगवान् की सेवामें लगाना यही वास्तविक 'साधुता' होती है। हममेंसे ऐसा कौन है जिसमे दोष नहीं हैं? तुम्हारे अन्दर भी दोष हो सकता है। यदि मैं कम्बलसे एक-एक करके रोम निकाल दूँ, तो कम्बल ही नहीं रहेगा। उसी प्रकार यदि सबके अन्दर दोष देखते रहे तो हमारा मठ खाली हो जाएगा। तब फिर मठ-मन्दिरका सेवा कार्य कौन करेगा?"

यह तो श्रील गुरुदेवकी गौण कृपाका परिचय है, उनकी मुख्य कृपाका परिचय तो उनकी महावदान्यता है।

अकृतद्रोह—युगधर्म नाम-सङ्कीर्तनके प्रवर्तक पतितपावन श्रीशचीनन्दन गौरहरि एवं गौराङ्ग अभिन्न तनु श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुने हरिनाम सङ्कीर्तनका प्रचार-प्रसार किया, उनके प्रचारके समय अनेक विपत्तियाँ आयी थीं, किन्तु उन्होंने सबकुछ सहन किया। यहाँ तक कि श्रीनित्यानन्द प्रभुने मार खाकर भी हरिनामका प्रचार किया एवं जगाइ-मधाइका उद्धारकर उन्हें कृष्णप्रेम दिया। ठीक उसी प्रकार श्रील गुरुदेव जब सम्पूर्ण विश्वमें व्यापक रूपसे व्रजभक्ति एवं हरिनामका प्रचार कर रहे थे, उस समय उनके लिए भी बहुत-सी विपत्तियाँ आयी थीं, किन्तु उन समस्त विपत्तियोंको सहनकर उनसे विचलित हुए बिना श्रील गुरुदेवने श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार किया।

अपने प्रति हिंसा-द्रोह किये जानेपर भी श्रीलगुरुदेवने किसीके प्रति हिंसा-द्रोह किये बिना सारे विश्वमें व्यापक रूपसे प्रचार किया। फलस्वरुप, आज विश्वभरके लोग श्रीलगुरुदेवकी श्रीवाणीका श्रवणकर उनका आश्रय लेकर हरिभजन परायण हो रहे हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हम सभी लोग देख रहे हैं।

सत्यसार—जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद कहते हैं-"मेरा निरपेक्ष सत्य भाषण अन्य मनुष्योंको अप्रीतिकर होगा, इस भयसे यदि सत्य कथनका परित्याग करूँ तो मेरा श्रौतपन्थका परित्याग कर अश्रौतपन्थ ग्रहण करना हो गया, मैं अवैदिक नास्तिक हो गया और सत्य स्वरूप भगवान्में मेरा विश्वास नहीं रहा।"

ठीक इसी प्रकार श्रील गुरुदेव शास्त्रोंके सिद्धान्त निरपेक्ष होकर बोलते थे। श्रील गुरुदेवके समय प्राकृत सहजियाओंने गौड़ीय सम्प्रदायके सम्बन्धमें बहुत-सी भ्रामक अपसिद्धान्तकी बातें बोली, उस समय श्रील गुरुदेवने वेद-वेदान्त, उपनिषद, पुराण, भागवत आदि शास्त्रोंके विचारसे उन अपसिद्धान्तोंका खण्डन किया। तब कोई भी प्राकृत सहजिया श्रील गुरुदेवके सामने नहीं आया। भयसे सब लोग इस प्रकार छिप गए जैसे वनके राजा सुनकर सभी प्राणी अपने-अपने बिलमें छिप जाते हैं। बादमें श्रील गुरुदेवने उन सहजिया लोगोंको शिक्षा देनेके लिए "प्रबन्ध-पञ्चकम्" नामक अपूर्व ग्रन्थ निकाला। इसका अध्ययन सभीको करना चाहिए तभी जान पायेंगे कि वास्तवमें गौड़ीय सिद्धान्त क्या है?

महावदान्य—श्रीचैतन्य महाप्रभुके लिए 'महावदान्य' शब्दका प्रयोग हुआ है। हमारे गुरुदेवमें भी हम उस महावदान्य गुणको देखते हैं।

वैष्णवोंको सबसे बड़ा वञ्चक कहा जाता है, इसलिए श्रील प्रभुपादके लिए 'गतिवञ्चितवञ्चकाचिन्त्यपद' इस शब्दका प्रयोग हुआ है। कारण—वैष्णवजन धन-सम्पत्ति, विद्या-बुद्धि, रूप-यौवन, मान-सम्मान, भोग, पूजा, प्रतिष्ठा माँगनेवालोंको वे ये वस्तुएँ तुरन्त दे देते हैं, और वास्तविक श्रेयः कृष्णप्रेमसे वञ्चित कर देते हैं। किन्तु हमारे श्रील गुरुदेव यह सब वस्तुएँ चाहनेवालोंपर शासनकर उन्हें कृष्णप्रेम देनेकी चेष्टा करते थे। और उस प्रेममें भी सर्वोत्तम 'राधादास्य'के लिए लोभ जाग्रत कराते थे, क्योंकि वे रसिक सन्त और राधारानीकी रमण-मञ्जरी हैं।

श्रील गुरुदेव सर्वदा हरिकथामें गौड़ीय-सम्प्रदायका विचार और साथ-साथ श्रीमती राधारानीकी रसमयी कथा सुनाते थे। इसी कारण एक समय बहुतसे लोग आपसमें चर्चा करने लगे कि श्रील नारायण महाराजजी यत्र-तत्र रसकी कथा सुनाते हैं। क्या ऐसा करना उचित है? और वे लोग शिकायत लेकर श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादके प्रिय शिष्य श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराजजीके पास गये। तब श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराजजी बोले-"देखो! अलग-अलग आचार्योंका वैशिष्ट्य अलग-अलग होता है, आज जगत्में ऐसी रसमयी कथाकी दुर्लभता दिखायी दे रही है। श्रीनारायण महाराज जगत् जीवोंपर कृपाकर उस मधुर रसमयी कथाका पान करा रहे हैं। यह तो उनकी वदान्यता है।"

श्रील गुरुदेवने हमारे परमगुरुदेवके निर्देशानुसार श्रील भक्तिविनोद ठाकुर एवं षड्-गोस्वामियों द्वारा रचित अधिकांश बङ्गला भाषाकी गौड़ीय-ग्रन्थावलीको हिन्दी भाषामें अनुवाद किया और फिर अंग्रेजी आदि बहुत-सी भाषाओंमें अनुवाद करवाया, जिससे सभी विश्ववासी श्रीमन्महाप्रभुके विचारोंको समझ सकें। उनका यह अवदान समस्त जीवोंके प्रति उनकी महावदान्यताका ही परिचय है

प्रचार वैशिष्ट्य—

वास्तवमें श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं परमाराध्यतम परम गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीकी अहैतुकी कृपासे श्रील गुरुदेवका प्रचार स्वतः ही सर्वत्र हो गया है। उनके प्रचारके लिए किसी प्रकार advertisement अथवा कोई poster नहीं लगाया गया था, तथापि इतना प्रचार कैसे सम्भव हुआ?

जिस प्रकार किसी वृक्षमें जब फूल खिलता है तो भ्रमरको बुलाना नहीं पड़ता है, वह अपने आप फूलकी सुगन्धसे आकर्षित होकर दूर-दूरसे उड़कर आ जाता है। और जिस फूलमें जितनी अधिक सुगन्ध होती है, भ्रमर उसपर उतना ही अधिक मँडराते हैं। ठीक उसी प्रकार श्रील गुरुदेवकी हरिकथाका ऐसा चमत्कार था कि जो एक बार भी सुनता, वह पुनः अवश्य सुनने आता और अनेकानेक लोगोंको अपने साथ लेकर आता। श्रील गुरुदेव अपनी हरिकथा विधिमार्ग-भक्तिसे प्रारम्भ करते थे और धीरे-धीरे रागमार्ग और अन्तमें रूपानुग भक्तिके सार राधा-दास्यम्की कैसे प्राप्ति हो—इस स्तरतक हरिकथाको ले जाते थे? उनकी रसमयी कथा सुननेके लिए लोग सदा उत्कण्ठित रहते थे।

एक बार श्रील गुरुदेव जब विदेशमें गये तो श्रील गुरुदेवने किसी भक्तसे पूछा-"आप कृष्णको किस रूपमें जानते हैं?" तब वह व्यक्ति बोला-"हमारे गुरुदेवने बताया है कि कृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं" तब श्रील गुरुदेव बोले-"ठीक है! इसके आगे और क्या है?" वह व्यक्ति तब कुछ बोल नहीं पाया, तब श्रील गुरुदेव बोले-"श्रीकृष्ण स्वयं

भगवान् हैं—ऐसी बातको क्या व्रजवासी लोग मानते हैं? नहीं! कारण यह है कि इस भावमें ऐश्वर्य झलकता है। इस भावसे व्रजप्रेम प्राप्त नहीं होगा। तब फिर व्रजवासी लोग कृष्णको कैसे मानते हैं? वे कृष्णको अपने सखा, पुत्र अथवा प्रियतमके रूपमें मानते हैं। इस भावमें व्रजवासियों और कृष्णके बीच मधुर सम्बन्ध है। ऐसे भावको ग्रहण करनेसे ही हमें व्रजप्रेम प्राप्त होगा।" श्रील गुरुदेवने इतना सूक्ष्म विचार दिखाया।

एक बार विदेशमें श्रील गुरुदेव भक्तजनोंके साथ हरिनाम सङ्कीर्तन करते हुए जा रहे थे। तब अचानक बहुत बड़ी-बड़ी लम्बे-लम्बे सींङ्गोंवाली प्रायः २०० गायें श्रील गुरुदेवको चारों तरफसे घेरकर सुमधुर हरिनाम सुनने लगीं। ऐसा चमत्कार देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गए और न्यूज़में छापा गया कि वृन्दावन (भारत)से एक ऐसे साधु-महात्मा आएँ हैं, जिनका हरिनाम पशु-पक्षी भी सुनते हैं। महाभागवतका यही लक्षण होता है, पशु-पक्षी आदि सभीको नामरसका पान कराना। जैसा कि श्रीचैतन्य महाप्रभु जब झारखण्डके रास्तेसे जा रहे थे, तब पशु-पक्षी आदि सभी प्राणी उनके मुखसे हरिनाम सुनकर मुग्ध हो गये थे और आपसमें हिंसा-द्वेष भूलकर "हरि बोल! हरि बोल!" कहते हुए नृत्य करने लगे थे।

वृद्धावस्थामें विश्वमें सर्वत्र जा-जाकर श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार करना सहज बात नहीं है। मनमें ऐसी प्रबल प्रचार-सेवोन्मुखवृत्ति और शरीरमें इतनी ऊर्जा केवल एक महापुरुषमें ही हो सकती है। एक बार किसी एक वैद्यने श्रील गुरुदेवके हाथकी नाड़ीको देखकर सेवकोंसे कहा था, "आश्चर्य है! इनके शरीरमें इतनी ऊर्जा कैसे है? हमने तो आजतक इस आयुके व्यक्तिमें ऐसी ऊर्जा नहीं देखी। यह साधारण व्यक्ति नहीं हैं, अवश्य ही बहुत बड़े महापुरुष हैं।" ऐसे बहुतसे चमत्कार श्रीगुरुदेवके जीवनमें देखनेको मिलते हैं।

वज्रसे भी अधिक कठोर और कुसुमसे भी अधिक कोमल—

श्रील गुरुदेवकी प्रचार-शैली परमगुरुदेवकी भान्ति थी। कोई शास्त्र विरुद्ध बात करता था तो, सिंहकी भाँति दहाड़कर उसके अपसिद्धान्तोंको चूर्ण-विचूर्ण कर देते थे। बड़े-बड़े पण्डित भी उनसे भयभीत रहते थे, उनके सम्मुख कुछ कहनेसे घबराते थे। दूसरी ओर भक्तोंके लिये वे बहुत ही सरल और विनम्र भावयुक्त थे। जैसे सिंह दूसरे प्राणियोंके लिए यम सदृश्य और अपने शावकके लिए वात्सल्यसे परिपूर्ण होता है, उसी प्रकार श्रील गुरुदेव, प्रकृत-सहजिया, मायावादी, पाखण्डी आदिके लिए यम सदृश्य और भक्तजनोंके लिए परम कृपालु, दयालु, शान्त और वात्सल्यभावसे पूर्ण थे।

सतीर्थ-प्रीति—

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजी, श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजजी एवं श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी—ये तीनों परम गुरुदेवके प्रिय शिष्य एवं श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तीन स्तम्भ-स्वरूप थे। श्रील गुरुदेव अपने सतीर्थ गुरुभ्राताओंको बहुत प्रीति और आदर करते थे। साधारणतः हम लोग किसीको अपने गुरुभाईको साष्टाङ्ग प्रणाम करते नहीं देखते हैं, किन्तु श्रील गुरुदेवके क्षेत्रमें उनके सम-व्यस्क सतीर्थ द्वारा भी उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करते देखा जाता था।

जब भी हम श्रील गुरुदेवकी सौम्य शान्तमूर्तिका ध्यान करते हैं, तो हमारे अन्दरके मोह-माया आदि दूर हो जाते हैं और हमें कृष्णभक्तिके लिए प्रेरणा मिलती है। अन्तमें श्रील गुरुदेवकी आविर्भाव-शतवर्षिकीके पावन अवसरपर उनके श्रीचरणकमलोंमें इस अधमदासका शत-शत नमन एवं वन्दनम्।

हरे कृष्ण!

आविर्भाव शतवार्षिकीपर श्रील महाराजजीकी करुणाका स्मरण

श्रीयुक्ता मालती दासी (काकद्वीप, पश्चिम बङ्ग)

यदि कोई कहे कि उसने अपनी चेष्टासे श्रीगुरुके चरणोंका आश्रय ग्रहण किया है, तो उसका ऐसा कहना अनुचित होगा, क्योंकि भगवत् कृपा न होने पर, साधु-सङ्गके बिना सद्गुरुका चरणाश्रय प्राप्त नहीं हो सकता। मैं स्वयं ही इसकी प्रत्यक्ष प्रमाण हूँ। काकद्वीपके समुद्र तीरवर्ती स्थानपर भगवान् श्रीनृसिंहदेवका एक अत्यधिक प्राचीन मन्दिर है। उस मन्दिरके जीर्णोद्धार होनेके उपरान्त उद्घाटनके समय श्रीधाम-मायापुर स्थित श्रीचैतन्य मठका एक ब्रह्मचारी वहाँपर आया था तथा उसने वहाँ कुछ दिनों तक श्रीमद्भागवतकी कथाका पाठ किया था। मैंने उस ब्रह्मचारीसे तीन प्रश्न किये थे। उस ब्रह्मचारीने मेरे किसी भी प्रश्नका उत्तर न देकर श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित जैवधर्म ग्रन्थकी एक प्रति मुझे उपहार दी थी। भगवान्के साथ सम्बन्ध स्थापित होनेपर भक्तकी कैसी अवस्था होती है, इस प्रश्नका उत्तर प्राप्त करनेके लिए मैंने तीन बार जैवधर्म ग्रन्थको पढ़ा। उक्त ग्रन्थमें मधुररसके विषयमें अनेक विचारोंका उल्लेख है। किसके पास जानेसे इन भावोंके वास्तविक स्वरूपको समझ पाऊँगी, यह चिन्ता मुझे सब समय सताती रहती थी।

एक दिन मेरे पति मुझे महेश पण्डितके श्रीपाटमें ले गये। उस मन्दिरके एक सेवकने हमसे कहा—यदि आपलोग श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमा करना चाहते हो तो, श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें जाओ। उनकी बात मानकर हम श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें पहुँचे। यह वर्ष १९९४ ई. की बात है। वहाँ पहुँचकर श्रील नारायण गोस्वामी महाराज, श्रील वामन गोस्वामी गुरु महाराज, श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज—ऐसे अहैतुकी कृपा-वर्षणकारी गुरुवर्गके दर्शन प्राप्त करना एवं उनका सान्निध्य प्राप्त करना मेरे लिए स्वर्णयुगके समान था। वहाँ श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी हरिकथाके माध्यमसे श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमामें श्रीव्रजमण्डलके दर्शन हुए। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके जैवधर्मकी धारा भी श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीकी कथाके माध्यमसे कुछ-कुछ समझमें आने लगी। मैंने अपने पतिसे कहा कि मैंने मन-ही-मनमें श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीको अपना गुरु मान लिया है। ऐसा सुनकर मेरे पतिने कहा कि यहाँके वर्तमान आचार्य तो श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज हैं, अतः उनके अलावा कोई भी दीक्षा नहीं देते हैं। उस वर्ष श्रीनवद्वीप-परिक्रमाके समय श्रील वामन गोस्वामी महाराज अपनी अस्वस्थताके कारण न तो हरिकथाका ही परिवेषण कर पाये और न ही परिक्रमामें कहीं पर भी सम्मिलित हो पाये। किन्तु मेरी ऐसी स्थिति थी कि मैं किसीकी भी बात सुननेके लिए प्रस्तुत नहीं थी। अन्तमें मैं कृष्णदास ब्रह्मचारीकी सहायतासे श्रील नारायण गोस्वामी महराजके पास पहुँच गयी।

श्रील नारायण गोस्वामी महराजके पास पहुँचकर मैंने उनको अपने मनकी बात बतलायी। श्रील महाराजजीने कहा—"ठीक है! तुमने मुझे अपना गुरु माना है, तो मैं भी तुम्हें अपनी शिष्या मानता हूँ। तुम मेरे साथ-साथ बोलो—हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।" यह कहकर श्रील महाराजजीने कहा "अब मैं तुम्हारा शिक्षागुरु बन गया। जो शिष्य गुरुकी बात सम्पूर्ण रूपसे पालन करता है—वही वास्तविक शिष्य है। तुम मेरी योग्य शिष्या

हो। मैं तुम्हें उत्तम वस्तु प्रदान करूँगा। सद्गुरु अपने शिष्यको उत्तम वस्तु ही प्रदान करते हैं। कल सुबह तुम गङ्गा स्नान करके अपने पतिके साथ वर्तमान गौड़ीय गगनके श्रेष्ठ आचार्य श्रील वामन गोस्वामी महाराजसे दीक्षा प्राप्त करो।" श्रील महाराजजीने स्वयं अपने हाथसे मेरा एवं मेरे पतिका नाम लिखकर दीक्षाके निवेदनके रूपमें श्रील वामन गोस्वामी महाराजजीके पास भेजा। इस प्रकार श्रील महाराजजीके कहनेपर मैंने अगले दिन श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीसे दीक्षा प्राप्त की।

अगले वर्ष श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमामें हरिकथाके समय सभामें उपस्थित थे—श्रील गुरु महाराज, श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज, श्रील नारायण गोस्वामी महाराज एवं दस-पन्द्रह अन्यान्य महाराज। श्रील नारायण गोस्वामी महाराजने अपनी हरिकथामें पुरीधाम और श्रीनवद्वीप-धाममें कुछ वैशिष्ट्य दिखलाये। श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजने छोटे हरिदासकी कथाके माध्यमसे ब्रह्मचारियोंको सावधान किया। श्रील वामन गोस्वामी महाराजने परिस्थितिको स्वाभाविक करनेके लिए कहा कि—साधक एवं साधिका, पुरुष और नारीका अभिमान दोनोंके लिए हानिकारक है, इत्यादि। इस प्रकार पाँच मिनटकी कथामें ही सब विचारोंका सुन्दर विश्लेषण करते हुए अपना वक्तव्य शेष किया।

मेरे मनमें इसका गम्भीर प्रभाव पड़ा। मैं अवाक् होकर गुरु-महाराजके मुखकी ओर देखती रह गयी। क्या अपूर्व भाष्य! कैसा शान्त स्वभाव! कैसी अपूर्व मूर्ति! तब मैं यह नहीं जानती थी कि ये ही मेरे गुरुदेव होंगे। उनके साथ मेरा कोई परिचय नहीं था। प्रथम दर्शनमें ही ऐसे गुरुदेवको श्रील नारायण गोस्वामी महाराजने मुझे उपहार दिया। श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमा समाप्त हुई। श्रील महाराजजीने मुझसे कहा—"तुम्हारे अनेक प्रश्न हैं न? व्रजमण्डल परिक्रमामें आओ। अर्द्ध-पक्व आमको मैं पका दूँगा, गौर-प्रेम दे दूँगा।"

उस वर्ष श्रील नारायण गोस्वामी महाराजने कृपापूर्वक मुझे व्रजमण्डल-परिक्रमामें बुला लिया। श्रीधाम वृन्दावनमें तब गोपीनाथ भवनका निर्माण-कार्य पूर्ण नहीं हुआ था। श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमाके समय श्रील महाराजजी वृन्दावनमें श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठमें सेवाकुञ्जके निकट अपनी भजन-कुटीरमें ठहरते थे। श्रील महाराजजी प्रतिदिन श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठसे गोपीनाथ भवनकी सभामें जाते थे। विदेशी भक्तोंको लेकर कुछ आलोचना होती थी, जिन बातोंको मैं स्वयं भी देखती थी। मैं इन बातोंको मनमें दबाकर रखती थी। एक दिन श्रील महाराजजी सभामें जा रहे थे। मैंने रास्तेमें ही उनसे कहा—महाराजजी! यदि आप सुनेंगे, तो मैं एक बात कहूँ?

श्रील महाराजजीने कहा—"हाँ बेटी, बताओ।"

मैंने कहा—"महाराजजी! विदेशसे आप जिन (नवीन)भक्तोंको बुलाकर लाये हैं और राधा-दास्यकी बात बतला रहे हैं, उन लोगोंमें शुद्ध-अशुद्धका विचार नहीं है, हरिनामकी माला, जूता, प्रसाद—इन सबको लेकर शौचालय चले जाते हैं।"

श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीके साथ मुझे कदापि भय या सङ्कोच नहीं होता था। श्रील महाराजजी मेरी बात सुनकर थोड़ा मुस्कराये। मेरे कुछ गुरुभ्रातागण इस विषयमें श्रील महाराजजीकी आलोचना करते, जिसे मैं सहन नहीं कर पाती। अतः मैंने साक्षात् श्रील महाराजजीसे पूछ ही लिया।

सन्ध्याकी सभामें जाकर श्रील महाराजजीने एक बङ्गलादेशके वैद्यकी कहानी सुनायी—"एक रोगीकी ऐसी अवस्था थी कि एक ग्रास खाद्य खानेपर या जल तक लेनेपर तुरन्त मलद्वारसे निकल जाता था। सभी वैद्य-चिकित्सक बोले कि यह रोगी अब नहीं बचेगा। इस सूचनाको पाकर पड़ोसी लोग उसके अन्तिम दर्शनके लिए आने लगे। उनमें-से एकने कहा कि 'मैं एक बङ्गलादेशी वैद्यको जानता हूँ, उनको एक बार दिखाते हैं, अन्तिम चेष्टा करते हैं।' घरके लोगोंको कुछ आशाकी किरण दिखायी दी। वैद्यको बुलाया गया। सब देख-सुनकर वैद्य बोले—'एक काम करो। एक पाव घी गरम करके ले आओ एवं थोड़ा-थोड़ा कर रोगीको पिला दो।' यह सुनकर घरके लोग अवाक् हो गये कि जल देने

पर ही मलद्वारसे निकल रहा है, तब फिर घीसे क्या होगा? वे सब एक दूसरेके मुखकी ओर देखने लगे। किसीके मुँहसे कोई बात नहीं निकल रही थी। तब उनमेंसे एकने कहा—'अन्ततः मर ही जाएगा न। वैद्यके अनुसार चिकित्सा करके देखते हैं, क्या होता है। हमारे पास तो कोई दूसरा उपाय भी नहीं है। वैद्यकी इस अन्तिम चेष्टासे बचेगा तो अच्छा, मरेगा तो अच्छा।' सभी लोग रोगीके बचने या मरनेकी बात सुननेके लिए बैठे हुए थे। घी खिलानेपर वह भी मलद्वारसे निकलने लगा, किन्तु फिर भी उसे वैद्यके परामर्शसे घी खिलाया गया। एक-दो दिनोंमें ही रोगीके शरीरमें कुछ सुधार दीखने लगा और रोगी बोलने लगा—'मुझे भूख लग रही है।' वैद्यने कहा—'उसे एक कटोरी बार्ली (जौ) बनाकर खिलाओ।' इस प्रकार धीरे-धीरे रोगीको पुनः जीवन मिल गया।

जलतक हजम न कर पानेपर भी घीकी चिकनाई और प्रतिषेधकता गुणसे उस रोगीके अन्दरूनी घाव धीरे-धीरे ठीक हो गये तथा वह सम्पूर्णरूपसे स्वस्थ हो गया। उसी प्रकार कृष्णभक्तिकी उन्नत कथाएँ—राधादास्यका विचार घी तुलनीय हैं। विषयासक्त व्यक्ति या साधारण साधकके द्वारा प्राथमिक अवस्थामें जल तुलनीय आत्मतत्त्वकी कथाएँ ही हृदयङ्गम (बोधगम्य) न होनेपर भी शुद्धभक्तोंसे घी तुलनीय कृष्णभक्तिकी उन्नत कथाओंका श्रद्धापूर्वक नियमित श्रवण करने पर ये कथाएँ धीरे-धीरे संसार-आसक्तिरूप रोगको दूर करके मुक्तावस्थाकी चरमसीमा राधाजीके पाल्यदासी-भाव तक पहुँचा देती हैं।"

सभासे लौटते समय श्रील महाराजजी मेरे कक्षके सामनेसे जा रहे थे। मैं श्रीश्यामसुन्दर मन्दिरसे एक प्रसादी माला लेकर आयी थी। मैं और मेरे पति मालाको लेकर खड़े थे। मेरे पतिने श्रील महाराजजीको माला पहनायी। श्रील महाराजजीने प्रसन्न होकर कहा—"हमारे दामाद बहुत अच्छे हैं।"

मुझसे कहा—"बेटी, तुमने वैद्यकी कथा सुनी?"

मैंने कहा—"सुनी।"

श्रील महाराजजी—"समझ गयी?"

मैंने कहा—"जी! चेष्टा कर रही हूँ।"

"ठीक है बेटी।"—कहकर थोड़ा मुस्कराकर श्रील महाराजजी अपनी भजन-कुटीमें चले गये।

एक अन्य वर्षकी श्रीव्रजमण्डल परिक्रमामें एक दिन गोपीनाथ भवनमें श्रील महाराजजी कुछ विदेशी भक्तोंके साथ बैठे हुए थे। मैंने श्रीश्रीराधादामोदर-मन्दिरसे एक प्रसादीमाला लाकर श्रील महाराजजीके पीछेसे उनको पहली बार अपने हाथोंसे माला पहनायी। पहनाकर जब मैं अपने हाथोंको सरका रही थी, इतनेमें श्रील महाराजजी जिस हाथसे हरिनामकी मालाकर रहे थे, अपने उसी हाथसे मेरे हाथको पकड़कर कहने लगे—"तो बेटी, तुम मुझको छोड़कर चली तो नहीं जाओगी?" यह सुनकर मैं रो पड़ी। मैं नहीं जानती थी कि इस बातका क्या अर्थ है। मैं बोली—"आपको छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ? मैं तो आपको छोड़कर नहीं जाऊँगी, परन्तु आप मुझे वचन दीजिए कि आप मुझे कभी भी छोड़कर नहीं जाएँगे। आपके समान मेरा भजन नहीं है, परन्तु इस यमुनाके तटपर एवं इमलीतलाके सनिकटमें बैठकर आप मुझे वचन दीजिए कि आप जिस लोकमें जाएँगे, उसी लोकमें मुझे भी बुला लीजिएगा।'

श्रील महाराजजीने कहा—"हाँ बेटी, मैं तुमको वचन देता हूँ।"

ऐसे गुरुवर्गका सङ्ग प्राप्तकर मैं धन्यातिधन्य हो गयी।

जल सिञ्चन करे, मल धोयाइले।
प्रतिवेशी हइया तुमि वैद्य आनाइले॥
घी खावाइया तुमि हृदय शोधिले।
हरिनाम दिया बीज वपन करिले॥
कि कहिब आमि—तुमि नारायण।
विश्व व्यापिया तुमि रहिले त्रिभुवन॥
व्रजवासी मथुरावासी तोमार जीवन॥
सकले काँदिया फेरे कोथाय नारायण?॥
अधम अभागी आमि जाने सर्वजने।
कृपा करि' राख मोरे तव श्रीचरणे॥

श्रील गुरुदेव-स्मरण-

मैं केवल कृष्णकी वंशीध्वनि सुन रहा हूँ

एक बार क्रिसमसके समय हम श्रील गुरुदेवके साथ फिलीपीन्सके सेबू द्वीप पर थे। भक्त लोगोंने श्रील गुरुदेवके ठहरनेके लिए एक अवकाश निवास(holiday resort)में व्यवस्था की थी। उस निवासकी व्यवस्था बहुत सुहावनी थी, पासमें ही कई ताड़के वृक्ष थे एवं नीले समुद्रका दृश्य अति सुन्दर था। श्रील गुरुदेवका कक्ष गलियारेका अन्तिम कक्ष था, जो समुद्रके निकटतम था। साधारणतः यह एक शान्तिपूर्ण स्थान होता है, परन्तु इस बार यह ऐसा नहीं था। इस कक्षके सामने ही समुद्रके तटपर तीव्र कोलाहलका वातावरण था।

जिन भक्तोंने वहाँ श्रील गुरुदेवके रहनेकी व्यवस्था की थी, उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि एक कम्पनीने बड़ा आड़म्बरपूर्ण क्रिसमस उत्सव मनानेके लिए इस अवकाश निवासको किराये पर ले लिया था। सांसारिक सङ्गीतोंकी तान और तुच्छ क्रीड़ाओंका शोरगुल वातावरणको कलुषित कर रहा था तथा सभी लोग अरुचिकर(कुत्सित) खान-पानमें रत थे।

ऐसी परिस्थितिमें श्रील गुरुदेवका वहाँ पर रहना हमारे लिए बड़े उद्वेगकी बात थी। तब भक्तोंने श्रील गुरुदेवसे कहा कि उनके लिए उसी निवासमें अन्य एक कक्षकी व्यवस्था की जा चुकी है जो इस कोलाहलसे बहुत दूर है।

परन्तु, हम सबको आश्चर्यचकित करते हुए श्रील गुरुदेवने सरलभावसे कहा—"उन लोगोंको बाधा मत देना। मैं केवल कृष्णकी वंशीध्वनि ही सुन रहा हूँ।"

—श्रीमती तुङ्गविद्या दासी, वृन्दावन

[gurudevamemories.comसे अनुदित]

श्रील गुरुदेव नित्य और शाश्वत वस्तु

एक बार स्वप्नमें श्रील गुरुदेवने श्रील रघुनाथदास गोस्वामी विरचित श्रीराधाकुण्डाष्टकका अन्तिम श्लोक 'अविकलमति देव्याश्चारुकुण्डाष्टकम् यः ... श्लिष्यमाणां प्रियां ताम्' मुझे सिखाया, जिसे मैं आँख खुलनेपर भूल गयी। केवल एक शब्द स्मरण रहा था 'अविकलमति'। आठ दिनों तक मैं सब समय मनमें चिन्तन करती रही, इस श्लोकको कहाँ खोजूँ! कहाँ खोजूँ! तभी आठवें दिन गौड़ीय गीतिगुच्छ पढ़ते समय वह श्लोक मिल गया। मेरी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं था। उसके बाद जब मैं गोवर्धन मठमें गुरुदेवसे मिली, तो गुरुदेवने कहा—"बेटी! गोपियोंके समान भाव ऊँचा करो।"

श्रील गुरुदेवके अप्रकटके बाद एक बार दिनमें अर्ध-निद्राकी अवस्थामें मैंने देखा कि गुरुदेव एक पुरानेसे कमरेमें बैठे थे। मैं बाहर गोपी-गीत गा रही थी। मधु दीदी और पाँच-छह लोग और भी थे।

मङ्गल-कणिकाएँ

उस कमरेके बाहर दीवारकी तरफ एक कदम्बका वृक्ष था। जब गुरुदेव कमरेसे बाहर निकलकर आये तो वृक्षसे गुरुदेवके ऊपर दो पुष्प गिरे।

श्रील गुरुदेवने मधु दीदीसे पूछा—यह कौन गा रहा है?

दीदी बोली—गीता, मेरे चाचाकी बेटी।

(श्रील गुरुदेव मेरा नाम नहीं जानते थे, मुझे मधुके चाचाकी बेटी या वर्द्धमानवाली कहकर परिचय देते थे।)

तब गुरुदेवने कहा—हमको तो इसने पहले कभी नहीं सुनाया।

फिर बोले—तुम्हारे गानेसे इसमें मालिनी छन्द हो रहा है।

मैं छन्दके बारेमें कुछ भी नहीं जानती थी। कार्तिक परिक्रमाके समय मैंने श्रीपाद माधव महाराजको सब कुछ बताया। उनसे पूछा भी, तो वे बोले—हम बादमें देखकर बताएँगे कौन-सा छन्द है।

किन्तु मुझे बहुत उत्सुकता थी। मैंने वर्द्धमानके मीठापुकुर स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके श्रीपाद भक्ति-उज्ज्वल मुनि महाराजसे कहा। उन्होंने मुझे गानेके लिए कहा। फिर मात्रा गिनकर कहा—गानेमें करुणता आनेसे मालिनी छन्द हो रहा है।

निष्कपट हृदयसे गुरुदेवका स्मरण करनेपर गुरुदेव आज भी मार्ग प्रशस्त करते हैं।

—श्रीमती गीता खण्डेलवाल
(वर्द्धमान, पश्चिम बङ्ग)

आचरण द्वारा शिक्षा

ईस्वी सन् १९८० दशकके आरम्भिक वर्षोंमें शीतकालका समय था। श्रील गुरुदेवको तेज बुखार था। मैं अपने माता-पिताके साथ गुरुदेवके दर्शनके लिए मठमें गयी। गुरुदेव पतलेसे गद्दे पर लेटे हुए थे और उन्होंने पतली-सी रजाई ओढ़ रखी थी। जब मेरे पिताजीने गुरुदेवके चरण स्पर्श किये तो पिताजीने कहा, "महाराजजी आपको तो बहुत तेज बुखार है और आप इतने पतलेसे गद्दे पर पतली-सी रजाई ओढ़कर लेटे हुए हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं आपके लिए मोटी रजाई और मोटा गदा भिजवा दूँ।" तब गुरुदेवने तुरन्त कहा, "नहीं, नहीं। हम अपने घर-बारकी समस्त सुविधाएँ छोड़कर भजन करनेके लिए आये है। यदि हम मोटे बिस्तरोंपर सोयेगें तो हमसे सुबह जल्दी उठा नही जायेगा फिर हम भजन कैसे करेंगे?

यद्यपि श्रील गुरुदेव श्रीराधाकृष्णके नित्य परिकर होनेके कारण साधारण साधककी अवस्थासे परे हैं, तथापि अपने इस आचरणके द्वारा उन्होंने हम बद्ध साधक जीवोंको शिक्षा दी कि हमें अपनी सुख-सुविधाओं पर बहुत ध्यान नही देना चाहिये, बल्कि साधन-भजन पर ही हमारा विशेष ध्यान होना चाहिये।

—सुश्री साधना दासी, मथुरा
[gurudevamemories.comसे अनुदित]

वैष्णव-विरह-संवाद

श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजकी स्मृतिमें

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

श्रील भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजके प्रयाणपर विरह-पुष्पाञ्जलि

—श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराज

श्रीवामननारायणकृपाधन्यमहात्मने ।
शास्त्रज्ञाय रसज्ञाय कृतज्ञाय परार्थिने॥
श्रीभागवताचार्याय गौरवाणीप्रचारिणे ।
रूपानुगकुलोत्तंसगुरुप्रेष्ठाय ते नमः॥

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज तथा श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके कृपाप्राप्त, शास्त्रज्ञ, रसज्ञ, कृतज्ञ, परोपकारी, श्रीभागवताचार्य, गौरवाणी-प्रचारक एवं श्रीरूपानुगकुलके अलङ्कार-स्वरूप, गुरुप्रेष्ठ-सेवक श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज! आपको नमस्कार करता हूँ॥

श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज परमार्थ
नित्यधामे करिला प्रयाण।
विरहे वैष्णवगण कान्दे स्मरि ताँर गुण
आचम्बिते वज्रेर पतन॥
दारुण विधिर विधि हरि निल गुणनिधि
रत्नहारा करिल धरणी।
धर्मप्राण येवा जन केन हरे ताँर प्राण
जगतेर क्षति ता ना जानि॥
श्रीवामन नारायण स्नेहधन्य महाजन
वैष्णवेर प्रिय सुधीमान।
देश माता कुल आदि धन्य करि यथाविधि
अध्ययन करि' समापन॥
नरोत्तम न्यासिगुणे गृह त्यजि गौड़वने
गुर्वाश्रय करिल महान।
शुभानन्द ब्रह्मचारी गुरुजन आज्ञाकारी
सदाचार आदर्शजीवन॥
यतिधर्मे तीर्थ नाम सर्वप्रिय गुणधाम
नारायणे समर्पित प्राण।
सङ्कीर्त्तने सुनिपुण प्रवचने विचक्षण
सेवा कार्ये सेवकप्रधान॥
विचाराचार प्रचारे धन्य दैन्य व्यवहारे
निर्मत्सर कृपालु वदान्य।
अमानि मानद धीर अदोषदरशी स्थिर
निष्कपट विज्ञजन मान्य॥
रूपानुगभक्तिधन वितरणे महीयान
वैष्णवीय कृत्ये विचक्षण।
गुरु गौर राधा हरि निष्ठ प्रेमेर पूजारी
गुणे ताँर मुग्ध सुधीजन॥
कृतज्ञ मनोज्ञवर शास्त्रज्ञ रसज्ञ पर
सारग्राही साधु क्षमापने।
अकिञ्चन भक्तिगुणे प्रबोधन समाधाने
मान्यतम मधुरालापने॥
सतीर्थे सुसख्यरीति गुरुते गौरव प्रीति
शिष्य भक्त वात्सल्ये वरेण्य।
परिक्रमार नेतृत्वे ग्रन्थ अनुवाद कृत्ये
गुरुकृपाधने धन्य धन्य॥
हासिमाखा मुखखानि देखि जुड़ाय पराणि
आर कि देखिब ए नयने।
रूपसनातन मठे बसिया ताँर निकटे
सुखी हब रूपकथा गाने॥
रमणमञ्जरी सने राधाकुण्ड कुञ्जवने
सुखे थाक राधा निषेवने।
गोविन्देर निवेदने कृपा कण वरिषणे
धन्य कर दीनहीन जने॥

परमार्थके पार्थस्वरूप श्रील भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज नित्यधाममें प्रस्थान कर गये हैं। उनके इस आकस्मिक वियोगसे वैष्णव-समाज पर मानो जैसे वज्रपात हुआ है। वैष्णवगण उनके दिव्य गुणोंका स्मरण करते हुए विलाप कर रहे हैं।

विधाताके नियम बड़े निर्दयी होते हैं। उन्होंने महाराजरूप गुणनिधि वैष्णवको हमारे नयनोंसे अदृश्य करके धरतीको रत्नशून्य कर दिया है। परन्तु जो धर्मप्राण सत्यधर्मके शिक्षक और प्रचारक हैं, जिनके मुखसे हरिकथासुधाको पान करनेके लिए सुधीजन चकोर पक्षीके समान प्रतीक्षा करते रहते हैं, उनको अन्य लोकमें ले जाना कितना हानिकारक है—[विधाताको] यह जानना उचित है। यद्यपि इस मर्त्यलोकमें कोई सदैव नहीं रहता, फिर भी सुहृत्का वियोग मृत्युसे भी अधिक यन्त्रणा-दायक है। विधिकी बात क्या कहें, यह तो हमारा दुर्भाग्य है, इसलिए हमने ऐसे वैष्णवका सङ्ग खो दिया।

पूज्यपाद तीर्थ महाराज पश्चिमबङ्गके दक्षिण चौबीस परगना जिलेके सुन्दरवनके अन्तर्गत लक्ष्मीजर्नादनपुर नामक एक पल्लीमें अपनी जननीको कृतार्थ करके, पल्ली और वसुन्धराको धन्य करके तथा पितरोंको आनन्दित करके प्रकट हुए थे। वे बचपनसे ही कृष्णानुरागी थे। वे जागतिक अध्ययनको अल्पकालमें ही विराम देकर परमार्थका अनुशीलन करनेके लिए नरोत्तम संन्यासीके समान गृहादिका त्यागकर श्रीगौरसुन्दरके प्रेमधाम श्रीनवद्वीप स्थित श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें उपस्थित हुए थे। उन्होंने मठाचार्य ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके श्रीचरणोंका आश्रय ग्रहण किया। उनसे दीक्षित होनेके बाद उनका नाम हुआ श्रीशुभानन्द ब्रह्मचारी। दीक्षाके बाद शिक्षादिके लिए उनके श्रीगुरुपादपद्मने उन्हें श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके निकट समर्पित कर दिया। वास्तवमें शिष्यत्वके आधार पर विचार किया जाय, तो वे श्रील नारायण गोस्वामी महाराजके विशेष स्नेहाशीषके पात्र थे। संन्यासके उपरान्त उनका नाम श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज हुआ। वे गुरु-वैष्णवोंके आज्ञाकारी निष्कपट निरलस सेवक थे।

श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज बड़े मेधावी थे। अल्प दिनोंमें ही उन्होंने गौड़ीय सिद्धान्तोंको आत्मसात् कर लिया था। वे हरिकीर्तनमें सुनिपुण थे। उनका पर-प्रबोधन कार्य प्रशंसनीय था तथा सिद्धान्त विषयमें किसी समस्याका समाधान करनेमें वे विचक्षण थे। अधिक क्या कहा जाय, वे सेवकोंमें अन्यतम थे।

वे गौड़ीय दर्शनके विचार और आचरण तथा प्रचारादि कार्यमें व्यस्त रहते थे। साथ ही वे दीन-हीन विनम्र स्वभावके धनी थे। धैर्य, सहिष्णुता और क्षमागुणमें गरीयान् उनके हृदयमें परश्रीकातरता न रहनेके कारण वे कृपाशील, उदार-स्वभाव, अमानी, मानद, धीर, अदोषदर्शी, सबके हितैषी, निष्कपट और विज्ञजनों द्वारा मान्य थे। श्रीरूपानुग भक्तिधनके वितरणमें वे महत्तम थे तथा वैष्णवीय स्मार्त्तकृत्य आदिमें पारङ्गत थे। वे गुरुवर्ग, गौरसुन्दर और राधाविनोदविहारीके एकनिष्ठ प्रेमके पुजारी थे। इन सभी कारणोंसे वैष्णव सज्जनगण उनके गुणोंसे मुग्ध थे।

कृतज्ञवर महाराज मनोज्ञ (सुन्दर) चरित्रवान् थे। उनकी शास्त्रज्ञता और रसज्ञता प्रशंसनीय है। सारग्राही और गुणग्राही महाराज अपने अभीष्ट साधन-भजनमें सत्यव्रत थे। वे भक्तिगुणोंमें अकिञ्चन, अपने प्रबोधन(प्रवचनों) द्वारा विषयोंका समाधान करनेवाले एवं मधुरालापी थे। सतीर्थ वैष्णवोंके प्रति उनका सख्यभाव था, गुरुजनोंके प्रति गौरवमय प्रीति तथा शिष्य-भक्तोंके प्रति कृपाशीर्वाद आदि गुणोंसे वे वरेण्य चरित्रके अधिकारी हुए थे। श्रीनवद्वीप और श्रीव्रजधाम परिक्रमाके नेतृत्व, भागवतादि गौड़ीय-ग्रन्थोंके राष्ट्रभाषामें अनुवाद आदि सेवाकार्य द्वारा वे गुरु-वैष्णवोंकी कृपा आकर्षण करते हुए धन्यातिधन्य थे। सदैव उनके

स्मितहास्ययुक्त मुखमण्डलके दर्शन और हरिकथामृत पानसे भक्तजनोंमें आनन्दकी तरङ्गे उठने लगती। क्या पुनः उनके स्मितहास्ययुक्त मुखमण्डलके दर्शनका सौभाग्य मिलेगा? अहो! प्रति वर्ष श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठमें श्रीरूप गोस्वामीके तिरोभाव महोत्सवमें धर्मसभामें उनके पास ही बैठकर श्रीरूप-महिमा गान करते हुए मैं सुखी हो रहा था। परन्तु अब क्या पुनः उनके पास बैठनेका अवसर और मिलेगा? अब महाराजके विरहीजनोंके निकट उनके प्रसङ्गकी चर्चा ही अनुशीलनीय है, क्योंकि प्रसङ्ग ही मानसिक सङ्ग प्रदान करता है। प्रसङ्गकारी ही वास्तव सङ्गका अधिकारी है। तथापि हे बन्धुवर महाराज! आप अपने नित्य स्वरूपमें श्रीरमणमञ्जरीके सङ्ग राधाकुण्डमें और वृन्दावनमें सेवाकुञ्जमें श्रीमती वृषभानुनन्दिनीके श्रीचरणकमलोंकी सेवामें [अग्रसर होकर] सुखी रहें तथा इस [श्रीभक्तिसर्वस्व] गोविन्द दासके निवेदनसे कृपाकणका वितरण करते हुए आपके दर्शनाभिलाषी दीनहीन जनोंको धन्य करें।

॥ श्रीकृष्णः शरणं मम॥

मन्मित्रन्तु तिरोहितम्

श्रीचैतन्यमहाप्रभोः करुणया, नामाश्रितो जीवने।
श्रीमद्भागवताब्धिमज्जनपरो, तीर्थप्रभुर्भक्तिमान्॥
राधाकृष्णकथारसैकरसिको, माधुर्यमूर्त्तिः सदा।
त्यक्त्वास्मान् भगवत्पदंञ्च गतवान्, शून्यं मनो मामकम्॥
श्रीमद्भक्तिवेदान्त-तीर्थपाद-महोदयाः।
श्रीभगवच्छरणं प्राप्ताः, दुःखितं व्रजमण्डलम्॥
तीर्थेन भक्तस्तरति, तीर्थेनैव च ज्ञानवान्।
कर्मिणश्चापि तीर्थेन, तीर्थमाहात्म्यमीदृशम्॥
तिरोहितास्तीर्थपादाः, सन्मित्राणि सदा मम।
तेषां विरहकाठिन्यं, कथं सेहे मनो मम॥

—शोक-सन्तप्त-हृदयो-वसन्तशास्त्री चतुर्वेदः

श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी करुणासे जिन्होंने सम्पूर्ण जीवन हरिनामका ही आश्रय लिया है तथा जो श्रीमद्भागवत-समुद्रमें सदैव निमग्न रहते हैं, वे भक्तिमान् तीर्थप्रभु ही हैं।

वे सदैव मधुरभावमें डूबे रहते थे एवं श्रीश्रीराधाकृष्णकी कथारसके रसिक थे। वे हमारा त्यागकर भगवत् चरणोंमें चले गये हैं, जिससे मेरा मन शून्य हो गया है।

श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थपाद महोदयके भगवत् शरणमें चले जानेपर ब्रजमण्डल दुःखित है।

तीर्थ प्रभुके सङ्गसे भक्तोंका उद्धार हो जाता था तथा व्यक्ति ज्ञानवान् हो जाते थे। वे कर्मीजनोंका भी मङ्गल करनेवाले थे, उनकी ऐसी महिमा है।

तीर्थपाद सदैव मेरे सद्बन्धु थे। उनके तिरोधान, उनके विरहदुःखको मेरा मन किस प्रकार सह सकता है?

—शोक-सन्तप्त-हृदय-श्रीवसन्तलाल शास्त्री

पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजकी प्रथम वर्षपूर्त्ति विरहतिथिके अवसरपर उनके सेवामय जीवनचरित्र एवं गुण-महिमाका किञ्चित् स्मरण—

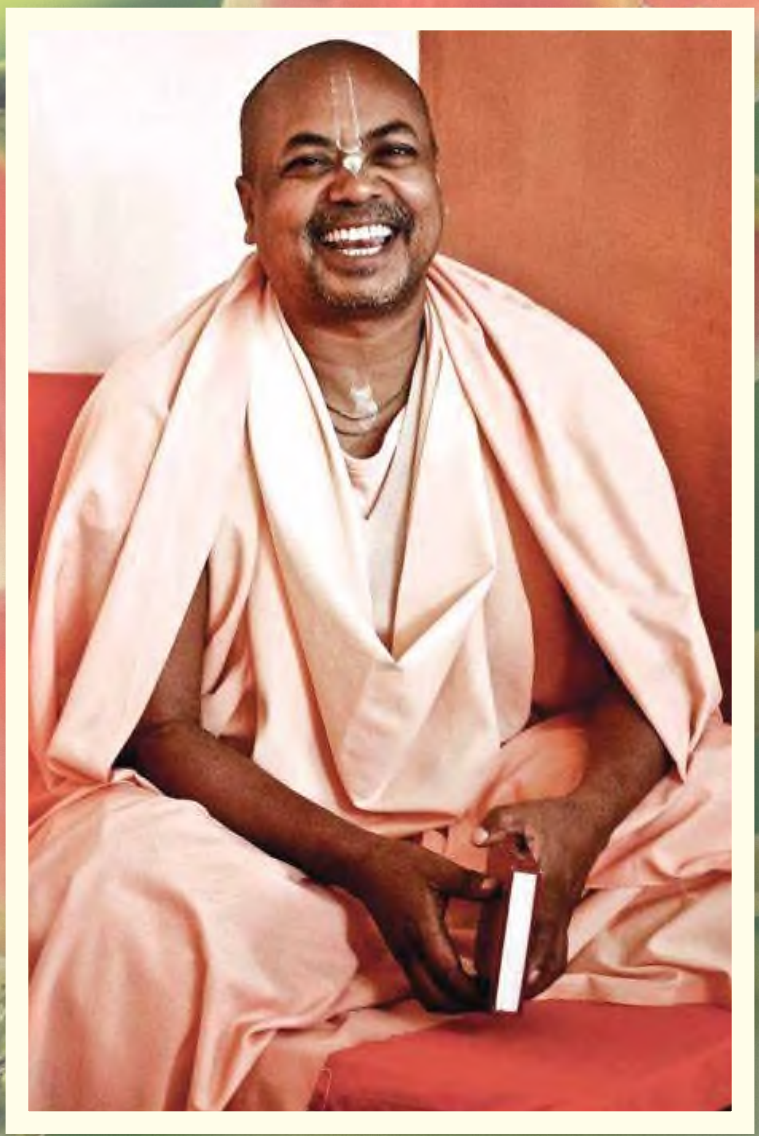

अत्यन्त अन्तर-वेदनाके साथ अवगत कराया जा रहा है कि गत १७ अगस्त, २०२० शुक्रवार, श्रीकृष्ण-द्वादशी-तिथिको अपराह्न ५-२० मिनटपर सारस्वत-गौड़ीय-वैष्णवोंके सुपरिचित, अमानी-मानद, अदोषदर्शी, अत्यन्त स्निग्ध, सरल, निरन्तर श्रीहरि-गुरु-वैष्णवसेवा-परायण श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज प्रायः ५९ वर्षकी आयुमें कलकत्तामें हमलोगोंको आकुल विरहसागरमें निमज्जितकर श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गकी साक्षात् सेवामें आत्मनियोग किये हैं। उन्होंने अपना जीवन अत्यन्त निष्ठापूर्वक श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवामें सम्पूर्णरूपसे उत्सर्ग किया था। उनका यह अकस्मात् प्रयाण वैष्णव-जगत्के लिए वज्रपात-स्वरूप है। उनके प्रयाणका समाचार एक मुहूर्तमें ही दावानलकी भाँति समग्र विश्वमें फैल गया था। १७ अगस्त, २०२० मध्य रात्रिमें १-३० बजे वाहनके द्वारा उनके कलेवरको श्रीनवद्वीपधाममें नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें लाया गया। अगले दिन प्रातः उनके गुणोंसे मुग्ध विभिन्न मठोंके संन्यासी-ब्रह्मचारीवृन्द, गृहस्थ पुरुष-महिला वैष्णवजन एवं सज्जनवृन्दने मठमें उपस्थित होकर उनके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-पुष्पाञ्जलि अर्पण की। वर्तमान समयमें कोरोना महामारीके कारण परिवहन व्यवस्था बन्द होनेके कारण तथा लोगोंकी भीड़ निषेध होनेके कारण बहुतसे भक्त उनका अन्तिम दर्शन तथा उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पण न कर सकनेके कारण बहुत दुःखी हुए तथा उन्होंने फोनके माध्यमसे अपने हृदयकी व्यथा व्यक्त की।

समाधि अनुष्ठान—

१८ अगस्त, २०२० शनिवार, अपराह्न ५ बजे यथारीति श्रीहरिनाम-सङ्कीर्तन करते-करते श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधाविनोदविहारीजीकी प्रसादी

माला श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजजीको अर्पणकर तथा उनकी आरतिकर उन्हें शयनपालकीमें विराजमान कराकर अभिन्न-गोवर्धन नवद्वीपके अन्तर्गत कोलद्वीप स्थित श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उनके शिक्षा-गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके समाधि-मन्दिर तथा श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधाविनोद-विहारीजीके मन्दिरकी परिक्रमा कराकर (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी समाधिके दायीं ओर) पूर्व निर्धारित समाधि-स्थलपर वैष्णव-सात्वत-स्मृतिके अनुसार विपुल हरिध्वनिके बीच उन्हें समाधिस्थ किया गया।

जन्म-स्थान एवं पूर्वाश्रम—

पूज्यपाद तीर्थ महाराजका पूर्वाश्रम पश्चिमबङ्गके २४ परगना जिलेके (सुन्दरवनके) अन्तर्गत लक्ष्मीजनार्दनपुर नामक गाँवमें था। इन्होंने लगभग सन् १९६१ ई॰ में सज्जन पिता श्रीमान् श्रीपति सामन्त और माता श्रीमती सरोजिनी देवी सामन्तकी

प्रथम सन्तानके रूपमे जन्म ग्रहण किया था। पूर्वाश्रममें उनका पितृदत्त नाम था—शशधर सामन्त। बाल्यकालसे ही ये अत्यन्त कृष्णानुरागी थे।

बाल्यकालमें दो तेजस्वी साधुओंका एक साथ दर्शन—

बाल्यकालसे ही शशधरका भगवान्‌के नामकीर्तन और हरिकथामें विषेश आग्रह देखा गया। कक्षा ६ तक पढ़ाई करनेके बाद शशधर संसारके प्रति उदासीन प्रवृत्तिके हो गये और अपने भीतर-ही-भीतर सोचते कि यह मैं कहाँ आ गया? मेरे बन्धु-बान्धव कहाँ हैं? इस प्रकार जहाँपर भी साधुओं द्वारा हरिकथा होती, वहाँ ये बड़े भावुक होकर कथा श्रवण करते। परम गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अपने सेवकोंके साथ प्रतिवर्ष सुन्दरवनमें जाकर श्रीमन्महाप्रभुकी कथाका प्रचार करते थे। परवर्त्ती कालमें गुरुपादपद्म श्रील वामन गोस्वामी महाराजने भी अपने सेवकोंके साथ इस क्षेत्रमें सनातन धर्म और प्रेमधर्मका विपुल रूपमें प्रचार-प्रसार किया। एक बार श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज और श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज एक साथ २४ परगना जिलेके सुन्दरवनमें प्रचारमें गये थे। उन दोनोंका तेजस्वीरूप देखकर बालक शशधर मोहित हो गये। तब उनकी इच्छा हुई की मैं मठमें साधुओंके पास रहकर जीवन व्यतीत करूँ। श्रील गुरुपादपद्मकी वीर्यवती अमृतमय कथाको सुनकर आकर्षित होकर ग्राम-ग्रामसे बहुत सेवक शिष्योंने मठवासी होकर गुरुसेवा द्वारा अपना जीवन सार्थक किया है और कर रहे हैं। पूज्यपाद तीर्थ महाराज उनमें अन्यतम उज्ज्वल-नक्षत्र रूपमें विद्यमान थे।

गृहत्याग और मठागमन—

बाल्यकालमें ही गाँवके स्कूलमें कक्षा ६ में अध्ययन करते समय शशधर (पूज्यपाद तीर्थ महाराज) ने स्थिर कर लिया था कि संसारका मोह-माया अनित्य और दुःखदायक है। सन् १९७४ में १३ वर्ष की आयुमें 'मैं कौन हूँ, कहाँसे आया हूँ, संसारकी मोह-माया अनित्य है, एकमात्र साधुसङ्गमें ही जीवनकी सार्थकता और नित्य आनन्द प्राप्त करनेके लिये वे संसारकी मोह-मायाका त्यागकर श्रीनवद्वीप-धामके उद्देश्यसे निष्किञ्चन अर्थात् फौटी कौड़ी भी साथ न लेकर सीधा श्रीगौरसुन्दरके प्रेमधाम श्रीधाम नवद्वीपस्थ श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूलकेन्द्र—श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें पहुँचे और अपना मठ जीवन आरम्भ किया। तत्पश्चात् श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति आचार्य जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजसे श्रीहरिनाम तथा दीक्षामन्त्र ग्रहणकर श्रीशुभानन्द ब्रह्मचारीके रूपमें परिचित हुए।

श्रील गुरुदेवसे सहज सम्बन्ध—

उस समय श्रील गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी भजन कुटीर श्रीदेवानन्द

गौड़ीय मठमें द्वितीयतल पर थी और निकट ही एक बड़े (हॉल) कमरेमें नवीन ब्रह्मचारीगण निवास करते थे। ये सब ब्रह्मचारी प्रतिदिन मठकी विभिन्न सेवाओंको करते, कीर्त्तन-पाठ-आरतिमें योगदान देते तथा श्रील गुरुदेवके निकट प्रतिदिन शास्त्र अध्ययन—श्लोक-कीर्त्तनादि कण्ठस्थ करके सुनाते और इस प्रकारसे पारमार्थिक अनुशीलन करते थे। उस समय प्रातः और सन्ध्या आरतिके उपरान्त नवीन ब्रह्मचारिगण सभी संन्यासियों और वरिष्ठ ब्रह्मचारियोंके कक्षमें नियमसे जा-जाकर दण्डवत् प्रणाम करते थे तथा उनकी परिचर्या-सेवा यथा—उनके कक्षकी सफाई करना, पीनेका जल ला देना, उनके कपड़े धो देना और पाद-सम्वाहन आदि किया करते थे। एक दिन सन्ध्याके उपरान्त जब सभी नवीन ब्रह्मचारी श्रील गुरुदेवके निकट प्रणाम करने गये, तब उन्होंने सभीसे उनके पिताका नाम पूछा। इसके उत्तरमें सभीने स्वाभाविक रूपसे अपने-अपने जन्मदाता पिताका नाम बताया। श्रील गुरुदेव अपने इस प्रकारसे पूछनेका भाव समझने नहीं दे रहे थे, क्योंकि वे स्वाभाविकरूपसे ही सबके साथ बात कर रहे थे। वहाँ परम गुरुदेवके शिष्य भी थे, किन्तु श्रील गुरुदेव क्या बोलना चाह रहे थे, कोई समझ नहीं पाया। तब वहाँ शुभानन्द प्रभु (श्रीतीर्थ महाराज) आये, तो श्रील गुरुदेवने उनसे भी पूछा—"शुभानन्द तुम्हारे पिताका नाम क्या है?" तो इसके उत्तरमे उन्होंने श्रील गुरुदेवके अन्तर भावानुसार उत्तर दिया कि मेरे पिताका नाम श्रील नारायण गोस्वामी महाराज है। उनके इस उत्तरको सुनकर श्रील गुरुदेव अत्यन्त प्रसन्न हुए और वहाँ उपस्थित सभी ब्रह्मचारियोंको शिक्षा दी कि श्रीगुरुदेव ही हमारे नित्य पिता हैं। "सेइ से परम बन्धु, सेइ पिता-माता। श्रीकृष्ण-चरणे येइ प्रेमभक्ति-दाता।"(चै.भ.मध्य) पूज्यपाद तीर्थ महाराज श्रील गुरुदेवके अन्तरभावको समझ लेते थे।

टाइफाइडसे ग्रस्त—

तत्पश्चात् श्रीशुभानन्द प्रभु (श्रीतीर्थ महाराज) श्रील गुरुदेवके आदेशसे श्रीकृष्णकृपा प्रभु (श्रीमद्भक्तिवेदान्त मधुसूदन महाराज)के आनुगत्यमें मठके भण्डारीके दायित्वको निपुणतासे पालन करने लगे। उस समय भण्डारीको रसोई भी करनी होती थी। अत्यन्त सेवाके कारण एक समय उनका शरीर अस्वस्थ हो गया। Typhoid से ग्रस्त होनेके कारण उन्हें प्रायः दो मास तक कष्ट सहना पड़ा। उन दिनोंमें टाइफाइड एक जानलेवा बीमारी थी, जिसकी कोई विशेष दवा उपलब्ध नहीं थी। उस समय उन्नत चिकित्साका सुयोग नहीं होनेके कारण केवलमात्र होम्योपैथी और ज्वरको कम करनेके लिए माथेपर सब समय जलकी पट्टी देनी होती थी। सिरको जलसे बार-बार धोते और पथ्यमे जौ (barley) दलिया दिया जाता था। ऐसी अवस्थामें भक्त लोग बारी-बारीसे आकर जल पट्टी देते रहते थे। कई बार तो ऐसा प्रतीत

होता मानो अब बचेंगे नहीं। एक बार ज्वराक्रान्त अवस्थामें वे केवल "बाबा-बाबा-नारायण महाराज! नारायण महाराज!" पुकारने लगे। तब श्रील गुरुदेवने आकर उनके सिरको सहलाकर जलपट्टी देते-देते कहा—"मैं आ गया हूँ, अब सब ठीक हो जाएँगा।" श्रील गुरुदेवकी कृपासे कुछ दिन बाद वे सम्पूर्ण रूपसे स्वस्थ हो गये।

श्रीबृहद्भागवतामृतम्का अनुशीलन—

श्रील गुरुदेवके सेवक लक्ष्मण प्रभुके चले जानेके उपरान्त श्रीशुभानन्द प्रभु (श्रीमद् तीर्थ महाराज) ने श्रील गुरुदेवकी साक्षात् सेवा प्राप्तकी। श्रीगुरुदेवसे बिना पूछे ही उन्होंने उनकी अलमारीसे बृहद्भागवतामृत ग्रन्थ लेकर पढ़ा एवं एक सप्ताह बाद ग्रन्थ वापस करते हुए बोले की इस ग्रन्थमें तो बहुत अच्छी कहानी है, मैंने पढ़ ली है। तब श्रील गुरुदेवने उनसे पूछा कि क्या कहानी पढ़ ली, तब उन्होंने बृहद्भागवतामृतम्के प्रथम-खण्डकी सारी कथा कह सुनाई, जिसे सुनकर श्रील गुरुदेव बहुत प्रसन्न हुए। सेवामें रहते हुए उन्होंने श्रील गुरुदेवके ग्रन्थागारसे बृहत्-भागवतामृतम् ग्रन्थका सम्पूर्ण अध्ययन किया। उस समय श्रील गुरुदेव भक्तोंको जैवधर्म पढ़ाते, गौड़ीय कण्ठहारके श्लोक और गौड़ीय-कीर्त्तन याद करवाते और प्रतिदिन बृहत् भागवतामृतम्का पाठ करते। श्रीशुभानन्द प्रभुकी कीर्त्तन करनेमें रुचि थी। यद्यपि वे कीर्त्तनके सुर-तालके विषय सुदक्ष नहीं थे, तथापि वे भावमें आविष्ट होकर क्रन्दन करते-करते कीर्त्तन करते थे। उनकी स्मृतिशक्ति प्रखर थी, वे प्रचुर श्लोक याद करते और उस समय इतनी सेवाके बीच भी श्रील गुरुदेवके कक्षसे एवं मठके ग्रन्थागारसे उन्होंने प्रायः सभी ग्रन्थोंका अध्ययन किया।

मथुरा मठमें आगमन—

कुछ वर्षों तक श्रीधाम-नवद्वीप स्थित श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें रहनेके पश्चात् उनके श्रीगुरुपादपद्म श्रील वामन गोस्वामी महाराजने शिक्षा आदि ग्रहण करनेके लिए उन्हें समितिके सह-सभापति श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वमी महाराजके हाथोंमें समर्पित किया। तबसे वे श्रील गुरुदेवके सेवकरूपमें मथुराके श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उपस्थित हुए। जिसका जिनके साथ पूर्व-पूर्व सम्बन्ध था, पूर्व-पूर्व जन्मकी सुकृतिके प्रभावसे सब उन-उनके प्रति आकर्षित हुए। पूज्यपाद तीर्थ महाराजका श्रील गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके प्रति प्रगाढ़ प्रीति-निष्ठा और आनुगत्य था। वे श्रील गुरुदेवके लिए प्राण देकर भी सेवा करनेके लिए प्रस्तुत रहते थे। श्रील गुरुदेवके प्रति अद्भुत प्रीतिवशतः वे उनके विशेष प्रिय और स्नेहके पात्र थे। श्रील गुरुदेवने सबको पारमार्थिक रूपसे तैयार किया—सभीको शिक्षा दी, किन्तु श्रीतीर्थ महाराज सभीमें अन्यतम—श्रेष्ठतम थे। यद्यपि वे श्रील वामन गोस्वामी महाराजके दीक्षा-शिष्य थे, किन्तु दीक्षा-गुरु एवं शिक्षा-गुरुमें अभेद ज्ञानवशतः वे श्रील नारायण गोस्वामी महाराज गत प्राण थे।

संस्कृत एवं हिन्दीका अध्ययन—

श्रीमद् तीर्थ महाराज बाल्यकालमें ही मठमें आ गये थे। अन्य भक्त तो मठमें जागतिक शिक्षा लेकर आये थे, किन्तु तीर्थ महाराजके पास जागतिक शिक्षाकी योग्यता अर्थात् कोई डिग्री आदि नहीं होनेके कारण वे जागतिक जड़ विद्यामें खूब दक्ष नहीं थे। उस समय ६ क्लास तक पढ़ाई करनेवाला कोई और अधिक शिक्षित हो सकता था, किन्तु तथापि मथुरामें रहते समय वे संस्कृत तथा हिन्दी भाषामें विशेष दक्ष हो गये। वे अत्यन्त मेधावी थे। एक साधारण मिट्टीके ढेलेसे पूर्णरूपसे वे एक मूर्त्तिमें परिणत हुए। वे संस्कृतके स्कूलमें गये थे, किन्तु पढ़ाई सम्पूर्ण नहीं की। अतएव यद्यपि वे संस्कृतमें कोई डिग्रीधारी नहीं थे, किन्तु उनका पाण्डित्य अगाध था।

सेवा और अनुशीलन एक साथ–

मथुरा मठके प्रारम्भिक मठवास कालमें मठमें पानी की कोई व्यवस्था नहीं थी। बाहरसे भरकर पानी लाना पड़ता था एवं नीचेके तलेमें कुँआ था। बाहरसे अथवा कुँऐसे एक–एक बाल्टी भरकर जल ऊपरके तले पर ले जाते समय श्रीशुभानन्द प्रभु एक–एक श्लोक याद कर लेते थे। इस प्रकार वे सेवा और अनुशीलन एक साथ करते थे।

गौड़ीय–सिद्धान्तोंमें पारङ्गत–

श्रीमद् तीर्थ महाराजकी जागतिक विद्या बहुत न होनेपर भी श्रीगुरु–वैष्णवोंकी कृपासे अति अल्प समयमें ही वे हरिकथा–कीर्तनमें अत्यन्त सुनिपुण तथा गौड़ीय सिद्धान्तोंमें पारङ्गत हो गये थे। श्रील गुरुदेव प्रतिवर्ष श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठमें श्रीरूप गोस्वामीका तिरोभाव–महोत्सव तथा श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्रीकृष्ण–जन्माष्टमी–महोत्सवके अवसरपर धर्मसभा तथा विद्वत्–सभाका आयोजन करते थे। उस सभामें व्रजमण्डलके बहुतसे सिद्धान्तविद् वैष्णवगण, पण्डित तथा भागवताचार्य उपस्थित होते थे। उस सभामें जब श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज वक्तृता देते थे, तो उनके मुखसे वैष्णवसिद्धान्त तथा श्रीमद्भागवतकी भावगम्भीर तथा प्राञ्जल व्याख्या श्रवणकर सभामें उपस्थित सभी वैष्णवगण तथा पण्डितगण आश्चर्यचकित और मुग्ध हो जाया करते थे। वे श्रील गुरुदेवके लिए कहते कि श्रील नारायण महाराजने कैसे–कैसे पण्डित तैयार किए हैं! श्रील नारायण महाराज–काक (कौए)को गरूड़ बना सकते हैं, 'मूकं करोति वाचालं ...।' श्रीमद् तीर्थ महाराजकी कैसी मधुर–ध्वनि, कैसा उनका संस्कृत उच्चारण और दक्षता थी। शास्त्रीय सिद्धान्तके विषयमें वे किसी भी प्रश्नका उत्तर देनेमें सिद्धहस्त थे।

श्रीमद्भागवत–कथामें दक्षता–

श्रीमद्भागवत श्रीमद् तीर्थ महाराजके रन्ध्र–रन्ध्रमें विराजमान होनेके कारण श्रीमद्भागवतमें उनकी विशेष दक्षता थी। हिन्दीभाषी नहीं होने पर भी वे शुद्ध हिन्दीभाषामें हरिकथा और भागवत–कथा–सप्ताह करते थे। श्रीमद्भागवतके किसी भी प्रसङ्गपर वे गौड़ीय–विचार, गौड़ीय–आचार्योंकी टीका–टिप्पणीसे व्याख्या कर सकते थे—यह सब वास्तवमें उनके हृदयस्थ और कण्ठस्थ था। श्रीमद्भागवतको समझना सहज नहीं है, कोटि जन्मकी सुकृति और साधुसङ्गके प्रभावसे उसका माहात्म्य उपलब्ध होता है। वे भागवत–भावुक थे, भागवतकथा बोलते–बोलते उनके नेत्रे सजल हो जाते थे। श्रीमती राधारानीकी कथा—प्रेमकी पराकाष्ठाका वर्णन करते–करते वे गद्गद् हो जाते और उनके नेत्रोंसे स्वाभाविक ही अश्रु प्रवाहित होने लगते। हमलोग पूज्यपाद तीर्थ

महाराजकी इस कोमल-हृदयताको ठीक रूपमें समझ नहीं पानेके कारण आपत्ति करते थे कि यह किस प्रकारका अभ्यास है, कि बात-बातमें वे क्रन्दन करने लगते हैं, किन्तु वे अपने नेत्रोंमें अश्रुधारा रोक नहीं पाते थे—ऐसे भावुक थे। वे जब हिन्दीमें या बङ्गलामें भागवत सप्ताह करते थे, तो वे सर्वदा ही गौड़ीय-सिद्धान्तकी बात, आचार्योंकी टीकासे ही कथा बोलते थे, उससे बाहरकी इधर-उधर की कथा कदापि नही बोलते थे। उनके समक्ष कोई यदि इधर-उधरकी कथा बोलता तो वे सबके सामने ही संशोधन कर देते थे। आजके समयमें देखा जाता है कि अधिकतर भागवतवक्ता भागवतके प्रतिपाद्य विषयको न कहकर सारा समय मनोरञ्जनमें ही व्यतीत कर देते हैं, जिस कारण वे भागवतके सभी प्रसङ्गोंको स्पर्श तक नहीं कर पाते हैं, किन्तु पूज्यपाद तीर्थ महाराज ऐसे नहीं थे। वे श्रीमद्भागवतके सभी प्रसङ्गोंको स्पर्श करते हुए भागवत सप्ताह करते और भागवतके चरम सिद्धान्त और प्रतिपाद्य विषयको बड़े ही सुन्दररूपसे श्रोताओंके समक्ष प्रस्तुत करते। मनोरञ्जन एवं नाच गानेमें अपना समय नष्ट नहीं करते थे। इसलिए श्रील गुरुदेव उनकी भागवत-कथासे प्रसन्न होते थे। उनके सदाहास्य मुखका दर्शनकर तथा हरिकथामृतका पानकर श्रोतावर्ग भी मन्त्रमुग्ध हो जाया करते थे।

भागवत-भूषण उपाधि—

पूज्यपाद तीर्थ महाराज एक रसिक वैष्णव थे। श्रीमद्भागवत तथा समस्त गौड़ीय-वैष्णव-साहित्यमें उनका विशेष अधिकार देखकर श्रील वामन गोस्वमी महाराज तथा श्रील श्रीगुरुदेव श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीने उन्हें "भागवतभूषण" की उपाधिसे विभूषित किया था। "भागवत-भूषण" का तात्पर्य है—श्रीमद्भागवत ही जिनका भूषण है, वे ही भागवत-भूषण हैं।

मठ-निर्माण सेवा—

पूज्यपाद तीर्थ महाराज समस्त सेवा कार्योंमें दक्ष थे अर्थात् रन्धनसे लेकर भागवत-पाठ, भिक्षा-सेवा, प्रचार-सेवा, श्रील गुरुदेवकी सेवा, विशेषतः निर्माण सेवामें उनका प्रचुर उत्साह था। श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठके निर्माणमें उनका सबसे अधिक परिश्रम और अवदान देखा जाता है। वे प्रतिदिन प्रातकालः मथुरासे वृन्दावन आते और निर्माणकार्यकी देखभाल करते एवं कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर स्वयं भी मजदूरोंके साथ कार्य करते थे। मठ निर्माणमें लगनेवाले लोहेके girder को छतों तक पहुँचानेके लिए छोटी-छोटी गलियोंमें स्थानाभावके कारण एक छतसे दूसरी छत लाँघते हुए स्वयं मजदूरोंके साथ girder को कन्धेपर रखकर मठकी निर्माणाधीन छत तक पहुँचाते थे। फिर शामको मथुरा लौटकर तुरन्त पाठ वक्तृता आदि अन्य सेवाओंमें लग जाते थे। उन्हें किसी प्रकार की थकावट या विश्रामकी आवश्यकता नहीं होती थी। उसी प्रकार दुर्वासा-ऋषि गौड़ीय आश्रमके निर्माणमें भी उनका सेवा-उद्यम देखा जाता है। गाँववालों द्वारा अनेक प्रकारकी बाधाएँ दिए जानेपर भी वे सेवासे पीछे नहीं हटे थे।

त्रिदण्ड संन्यासवेश ग्रहण—

विगत २० मार्च, २००० सोमवारको श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमाके समय श्रीगौरजन्मोत्सवके दिन श्रीशुभानन्द प्रभुने अपने गुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीसे त्रिदण्ड संन्यासवेश ग्रहण किया और तबसे वे जगत्में 'त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज' के नामसे परिचित हुए।

ग्रन्थसेवा—

श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजने श्रीमन्महाप्रभुके सिद्धान्त तथा गौड़ीय गुरुवर्गके विशेषतः अपने दीक्षा तथा शिक्षा-गुरुपादपद्मके निर्देशित तथा प्रदर्शित

पथका अनुसरण करते हए उनका मनोऽभीष्ट पूर्ण करनेके लिए श्रीमद्भागवतम्, ब्रह्मसंहिता, गीत-गोविन्द आदि बहुतसे ग्रन्थोंका टीकाके साथ हिन्दीमें अनुवाद किया है। वे श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्ट-कर्तृक प्रकाशित हिन्दी 'श्रीश्रीभागवत-पत्रिका' के सहकारी सम्पादक-संघके सदस्य भी थे। ग्रन्थसेवामें उनकी निष्ठा-निरन्तरता और आग्रह था। यद्यपि वे हिन्दी भाषी नहीं थे, तथापि उन्होंने हिन्दी भाषामें ग्रन्थोंका अनुवादकर हिन्दी पारमार्थिक साहित्यकी समृद्धिकर जगत्में एक अमूल्य योगदान दिया है।

श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार

पूज्यपाद तीर्थ महाराज श्रील गुरुदेवके चरणाश्रितजनोंमें मठके मूल और प्रधान प्रचारक थे। उन्होंने भारतके हिन्दीभाषी क्षेत्रोंमें और विश्वके अनेक पूर्वी एवं पश्चिमी देशोंमें हिन्दी और अंग्रेजी भाषामें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार किया है। श्रीगौरवाणीका प्रचार करनेके लिए श्रीमद् तीर्थ महाराजने श्रील गुरुदेवके साथ अमेरिका, हॉलैण्ड, आस्ट्रेलिया इंग्लैण्ड,

चीन आदि अनेक पाश्चात्य एवं पूर्वी देशोंकी यात्राएँ की। विशेषतः प्रतिवर्ष बङ्गालके दक्षिण २४ परगना अञ्चलमें उन्होंने विपुलरूपमें प्रचारकर चावल भिक्षा आदि संग्रह, बहुतसे प्रचार-केन्द्र स्थापन एवं बहुत शिष्यादि किए हैं।

दक्षतापूर्वक समस्त दायित्वोंका सम्पादन—

विगत सन् २०१० में श्रील गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके अप्रकट होनेके बाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज अपने श्रीगुरुपादपद्म श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीके द्वारा प्रतिष्ठित "श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्ट" के सह-सभापति पदमें अधिष्ठित हुए एवं २०१२ में श्रील गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके द्वारा प्रतिष्ठित "इन्टरनैशनल गौड़ीय वेदान्त ट्रस्ट" के सभापति-रूपमें मनोनीत हुए। अप्रकटकालसे पूर्वतक उन्होंने उक्त पदोंपर आसीन रहकर दक्षतापूर्वक समस्त दायित्वोंका सम्पादन किया। श्रीमद् तीर्थ महाराज किसी पद या विद्वताके अभिमानसे रहित थे।

बङ्गाल-प्रचारमें उत्साही एवं परिश्रमी—

पूज्यपाद तीर्थ महाराज ३०-३५ वर्षोंसे बङ्गालमें प्रचार कर रहे थे और श्रीनवद्वीपमें श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ बननेके उपरान्त उन्होंने और अधिक समय देकर बङ्गालमें प्रचार करना आरम्भ कर दिया था। श्रीमद् तीर्थ महाराज दक्षिण २४ परगना, सुन्दरवन आदि स्थानोंमें प्रचारके लिए जाते थे। एक बार उनके प्रचारमें बाधा देनेके लिए उनके कुछ विरोधी लोगोंने उनका नाम बदनाम करनेके लिए कुछ आपत्तिजनक पत्र बाँट दिये थे। किन्तु श्रीमन्महाप्रभु तथा श्रीगुरुवर्गकी सेवाके लिए श्रीमद् तीर्थ महाराज लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए, बल्कि और भी अधिक उत्साहसे प्रचार करने लगे। अनेक प्रकारके

अपमान, निन्दा और विरोधिता सहन करके भी वे प्रचारमें कठोर परिश्रम करते थे। दिनरात एक करके वे सुदूर गाँव-गाँवमें जाकर हरिकथा उत्सव करते और वहाँके निवासियोंसे श्रीगौरजन्म उत्सवके लिए चावल भिक्षा करके उन्हें श्रीनवदीप-धाम-परिक्रमाके लिए आह्वान करते थे।

कालक्रमसे कुछ कारणवशतः सन् २००३ में श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिसे बाहर आ गये। उनकी पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमाकी प्रबल इच्छा थी, क्योंकि श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा उनके प्राण-स्वरूप थी। सन् २००४ में गौर-पूर्णिमा उत्सवसे पूर्व श्रीगिरीधारी गौड़ीय मठ, गोवर्धनसे श्रील गुरुदेवने श्रीनवदीप-धाम-परिक्रमाका स्मरणकर भक्तोंको व्रजमण्डलके नवद्वीपधाम-अभिन्न विभिन्न स्थानोंका दर्शन कराया। सन् २००५ में श्रील गुरुदेवने श्रीनवद्वीप-धामके कोलेरडाङ्गा लेनमें संग्रहीत स्थानपर 'श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ' की स्थापनाकर विशाल पण्डाल लगाकर श्रीनवद्वीपधाम-परिकमाका आयोजन किया। उस वर्ष श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमासे दो मास पूर्व श्रील गुरुदेवने श्रीमद् तीर्थ महाराजसे पूछा कि क्या तुम अपने बङ्गाल-प्रचारसे २०० लोगोंको परिक्रमाके लिए ला सकते हो? तब श्रीतीर्थ महाराजने उत्तर दिया की गुरुदेव आपकी कृपासे दो-सौ क्या २००० लोगोंको लेकर आऊँगा और उन्होंने ऐसा किया भी।

श्रीमद् तीर्थ महाराज श्रीगौरजन्म-उत्सवके लिए बङ्गाल प्रचारके चारमास कालमें विभिन्न स्थानोंपर बहुत परिश्रम करते थे। वे एक दिनमें तीन-चार यज्ञ करते थे। इन यज्ञ-अनुष्ठानोंके लिए वे किसीपर निर्भर नही रहते थे, स्वंय ही सब व्यवस्था कर लेते थे। अस्वस्थ होने पर भी वे सेवासे विच्युत नही होते थे। तीन बार हरिकथा बोलते, कभी-कभी स्वयं परिवेशन भी करते थे। रात्रि १२ बजेके लगभग

विश्रामके लिए जाते और ठीक ३ बजे उठकर सिरपर थोड़ा-सा ठण्डा तेल लगाकर ग्रन्थ लेखनका कार्य करते थे। ४:३० बजे लेखनको विराम देकर स्नानादिसे निवृत्त होकर गिरीराजजीका अभिषेक करते और मङ्गल-आरती करते थे। तब अपने साथ आये ब्रह्मचारियोंको उठाते और पाठ-कीर्त्तनके उपरान्त उनको चावल भिक्षाके लिए भेज देते थे। इतनी सेवाकी प्रचुरतामें भी आवश्यकता पड़नेपर श्रीतीर्थ महाराज रसोई करनेमें भी पीछे नहीं रहते थे। दो-पाँच हजार जितने भी लोग हों, वे रसोई सेवामें कूद पड़ते थे, कभी भी इससे घबराते नहीं थे। इस प्रकारकी सेवा वे सम्पूर्ण दक्षिण चौबीस परगनामें चार मास तक करते थे। किसी-किसी स्थान पर खान-पीनकी व्यवस्था भी नहीं रहती थी। गाँवमें छोटे रास्तोंपर कटा हुआ धान बिखरा पड़ा रहता था। ऐसे स्थानोंपर किसी वाहनका जाना सम्भव नहीं होता था, केवल पैदल ही जाना सम्भव होता था। वे ५-६ किलोमीटर चलकर लोगोंके घरमें चावल भिक्षाके लिए जाते थे। गाँवमें ४००-५०० लोगोंकी रसोई करके प्रसाद खिलाकर हरिकथा सुनाते थे। उस गाँवके गृहस्थ भक्तोंके घरोंसे परिक्रमाके लिए कुल मिलाकर केवल एक या दो बोरा चावल ही मिलता था। कहीं-कहीं तो मात्र २-३ या ५ किलों चावल ही मिलता था, तथापि श्रीतीर्थ महाराज उन गाँवोंमें जाते और समस्त ग्रामवासियोंको श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमामें आनेके लिए निमन्त्रण करते थे।

प्रचारमें जानेसे पूर्व सभी प्रचारक यही बोलते कि हमें अच्छा मृदङ्ग बजानेवाला चाहिए, अच्छा कीर्त्तन करनेवाला चाहिए, नहीं तो प्रचार कैसे होगा? श्रीमद् तीर्थ महाराज कहते थे कि जितने भी अच्छे लोग हैं आपलोग ले लो, और जो प्रचारमें चलेगा नहीं, किसी कामका नहीं है, दुष्ट, बदमाश है, मैं उनको लेकर प्रचार करूँगा और वे ऐसा करते भी थे। ऐसे लोगोंके साथ प्रचार करते-करते २४ परगनाके

कोने-कोनेमें पहुँचकर उन्होंने एक बड़े वृक्षके जड़ फैलावकी भाँति प्रचार किया है।

श्रीमद् तीर्थ महाराजका प्रचार वैशिष्ट्य ऐसा था कि वे सभीको आकर्षित करने लगे थे। क्या धनी, क्या निर्धन—उनकी प्रीतिसे आबद्ध होकर उनके प्रचार क्षेत्रसे श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमा और श्रीगौर-जन्मोत्सवके लिए हजारों लोग आने लगे थे। श्रीनवदीप-धाम-परिक्रमाके लिए सभी लोग मिलकर भी जितनी चावल-भिक्षा करते थे, श्रीतीर्थ महाराज अकेले ही उन सबसे दस गुणा अधिक चावल संग्रह करते थे। श्रीमद् तीर्थ महाराज सभी लोगोंको आश्वासन देते थे कि वे उन लोगोंके रहनेकी, प्रसादकी, सुन्दर-सुन्दर हरिकथा सुनाने की व्यवस्था करेगें। केवल तीर्थ महाराजको प्रीति करनेके कारण ही यात्री नदीजलमे ज्वारकी भाँति चले आते थे। इस विशेष गुणके कारण वे सबसे पृथक थे। यही है श्रील केशव गोस्वामी महाराजका प्रचार वैशिष्ट्य—श्रील वामन गोस्वामी महाराज एवं श्रील नारायण गोस्वामी महाराजका प्रचार वैशिष्ट्य तथा उनके प्रतिनिधि श्रीमद् तीर्थ महाराजका प्रचार वैशिष्ट्य जो अपने जीवनके अन्तकाल तक सम्पूर्णरूपसे गुरुसेवा-धामसेवा-श्रीराधाविनोदविहारीजी एवं गिरिराजजीकी सेवा कर गये हैं।

श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमा और श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमाके मुख्य उद्यमी—

श्रील गुरुदेवके अप्रकटके उपरान्त श्रीमद्तीर्थ महाराज ही १० दिवसीय श्रीधाम-नवद्वीप-परिक्रमा और ४५ दिवसीय चौरासी-कोस व्रजमण्डल-परिक्रमाको नेतृत्व प्रदान करनेवाले मुख्य उद्यमी थे। Volcanic Energy से परिपूर्ण परमानन्द सहित वे अकेले ही सौ लोगोंके उत्साहसे धाम-परिक्रमाओंका सुचारुरूपसे और उदारता पूर्वक परिचालन करते थे। वे बङ्गालके प्रचारसे कई हजार लोगोंको आकर्षित करके श्रीनवदीप-धाम-परिक्रमा

एवं ८४ कोस व्रजमण्डल परिक्रमामें ले आते थे। एकमात्र उनके ही आकर्षणमें बङ्गाली भक्तोंका भरोसा था। उनमें प्रायः लोग निर्धन होते, जो कि परिक्रमाका खर्च देनेमें सर्वथा असमर्थ होते थे। परन्तु श्रीमद् तीर्थ महाराज ऐसे आर्थिक रूपसे असमर्थ लोगोंको भी निशुल्क ही परिक्रमाका सुयोग प्रदान किया करते थे। इस विषयमें हमारे गुरुवर्गके विचार हैं कि संसारबद्ध जीवोंके कल्याणके लिए हम अपने पाससे भी देकर लाभ कमाएँगे न कि केवलमात्र उन जीवोंसे कुछ अर्थ संग्रह करके, अर्थात् आवश्यकता पड़नेपर अपने पाससे भी खर्च करके उन जीवोंकी भक्ति-उन्मुखी सुकृति अर्जित करवाकर भक्त-भगवान्की कृपारूपी लाभ कमाएँगे। इसी विचारमें प्रतिष्ठित होनेके कारण पूज्यपाद तीर्थ महाराज अपनी समस्त प्रणामी को परिक्रमाओंके सुचारु निर्वाह-परिचालन हेतु न्यस्त कर देते थे और किसीके अर्थ-अभाववशतः उस व्यक्तिको धाम-परिक्रमाके सौभाग्यसे वञ्चित नहीं करते थे।

श्रीमद् तीर्थ महाराज इन दोनों वार्षिक परिक्रमाओंकी सभी सेवाओंमें अग्रगणी रहकर सभी यात्रियोंकी सुविधा-असुविधाका ध्यान रखते थे। परिक्रमाके लिए संकल्पसे आरम्भकर चावल और धन आदि की भिक्षा, परिक्रमाकारी यात्रियोंके रहने और प्रसाद आदि की व्यवस्था, उनके स्वास्थ्यके लिए दवा-डाक्टरकी व्यवस्था, प्रतिदिन नियमपूर्वक पाठ-कीर्त्तन-हरिकथा, विभिन्न लीला-स्थलियोंपर परिक्रमाओंका नेतृत्व और फिर जितना भी विलम्ब होनेपर भी अन्तिम परिक्रमाकारीके साथ ही मठमें लौटना। श्रीगौर जन्म-उत्सवमें अभिषेक आदि की व्यवस्था और वैष्णव-होम आदि इस प्रकार वे अनेक सेवावृत्तियोंसे परिपूर्ण थे। यहाँ तक की आवश्यकता पड़ने पर वे स्वयं ही पैखाना साफ करनेमें भी किसी प्रकारका संकोच अनुभव नहीं करते थे। परम उत्साहके साथ श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमाके सम्पन्न होते ही आगामी श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमाके लिए यत्नशील हो जाते थे। इस प्रकार उन्होंने श्रील गुरुदेव, परम गुरुदेव, श्रील प्रभुपाद और श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके जीव कल्याणके लिए धाम-परिक्रमा सम्बन्धी आदेश-निर्देश और आचार-विचारका अपने जीवनके अन्तिम कालतक देह-मन-धन-प्राण-वचन-सर्वस्व देकर पालन एवं संरक्षण करके गुरुवर्गकी मनोऽभीष्ट सेवा की है।

पूज्यपाद तीर्थ महाराज श्रीनवदीप-धाम-परिक्रमामें सभीके साथ पैदल चलकर ही पूरी परिक्रमा करते थे। हमने जीवनमें उनको कभी भी रिक्शा-वाहन आदिमें बैठकर परिक्रमा करते नहीं देखा। व्रजमण्डल परिक्रमामें भी वे सभी यात्रियोंके साथ बसमें ही यात्रा करते थे। अन्यान्य महाराज-ब्रह्मचारी आदि दैनिक दर्शन समाप्ति पर कार-आदिमें बैठकर लौट आते थे, किन्तु श्रीमद् तीर्थ महाराज अस्वस्थ होने पर भी या कष्ट होने पर भी अन्यथा नहीं करते थे, अर्थात् वे अन्य सभी यात्रियोंकी भाँति साधारण रूपमें ही यात्रा करते थे, वे कहते थे इन यात्रियोंके साथमें नहीं रहनेसे उचित नहीं होगा। उनके ऐसे स्निग्ध मधुर-व्यवहारसे बहुतलोग मन्त्रमुग्धकी भाँति उनके

प्रति आकर्षित हो गये थे। धीरे-धीरे हरिभजन-पिपासु श्रद्धालु नर-नारी उनसे श्रीहरिनाम एवं दीक्षा ग्रहणकर आत्मकल्याणके मार्गमें अग्रसर होने लगे।

वैष्णव-सात्वत-क्रियामें विशेष दक्षता—

पूज्यपाद तीर्थ महाराज वैष्णव-सात्वत-क्रियामें विशेष दक्ष थे। विशेषरूपसे सात्वत-वैष्णवस्मृतिके अनुसार श्रीमन्दिर-प्रतिष्ठा, विग्रह-प्रतिष्ठा, उपनयन, भित्ति-स्थापन, वैष्णव-होम, श्राद्ध-तर्पणादि क्रियाओंमें विशेष पारङ्गत और विचक्षण तथा मन्त्रोचारणमें सुनिपुण थे। समस्त वैष्णवगण उन्हें 'पण्डितजी' कहकर सम्मान करते थे। श्रील गुरुदेव श्रीतीर्थ महाराजके द्वारा ही समस्त मन्दिर और श्रीविग्रह प्रतिष्ठादि करवाते थे। वे घण्टों तक बिना किसी ग्रन्थको देखे अपनी स्मृतिसे ही मन्त्रपर मन्त्र उच्चारण किए जाते थे। उनके जैसी स्मृतिशक्ति इस जगतमें विरल है। श्रील गुरुदेवके प्रकटकालसे ही हमने देखा कि श्रीमद् तीर्थ महाराज ही श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमा और श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमाके संकल्पके समय मन्त्रोंका जल प्रवाहरूपमें उच्चारण करते मानों उनके लिए ये सबकुछ ही सहज-सरल-तरल था।

यद्यपि श्रील गुरुदेवने सभीको सिखाया था, सभीको तैयार किया था, किन्तु वैष्णव-सात्वत-क्रियाके क्षेत्रमें श्रीमद् तीर्थ महाराजके समकक्ष कोई हो नही सका। श्रील गुरुदेवने बड़े यत्नसे श्रीतीर्थ महाराजको रत्नके रूपमें तैयार किया था।

उत्साहमय सेवा—

पूज्यपाद तीर्थ महाराज सेवा एवं उत्साहके मूर्तिमान स्वरूप थे। वे प्रत्येक सेवाको बड़े उत्साह एवं यत्नसे सम्पादित करते थे। उनके जीवनमें आलस्यके लिए कोई स्थान नहीं था। एक सेवा पूर्ण करनेके बाद दूसरी सेवाके लिए तुरन्त प्रस्तुत रहते थे। उनके बङ्गाल-प्रचारके कारण प्रतिवर्ष श्रीनवदीप-धाम-परिक्रमामें प्रचुर लोंगोके समागम हेतु उन्होंने पिछले २-३ वर्षोंसे श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ,नवदीपके असम्पूर्ण कार्योंको व्यक्तिगत चेष्टाओंसे सम्पूर्ण करना आरम्भ कर दिया था। यदि हठात् कोई यात्री मठमें उपस्थित हो जाता तो वे असमयमें भी अपने सेवाकार्यको थोड़ा स्थगित कर उसके लिए प्रसाद आदि की व्यवस्था करते थे।

उदार चित्तवृत्तिसे युक्त—

श्रीमद् तीर्थ महाराज समस्त सेवाओंमें दक्ष, सभीके प्रिय और श्रेष्ठ स्वरूप थे। वे सभीके प्रति उदार चित्तवृत्तिसे युक्त एवं मठ-मिशनके प्रचार-प्रसारके लिए सङ्कीर्णताओंसे रहित थे। वे जैसे प्रचारक, सेवक, कथावाचक थे, वैसे ही सबके साथमें मधुर-व्यवहार रखनेवाले थे। अनेक लोगोंके साथ उनका मान-अभिमान भी होता था, किन्तु वे कभी भी उसको मनमें नहीं रखते थे। मान-अभिमान होने पर अनेक लोग उसे मनमें बहुत समय तक रख लेते है, किन्तु श्रीतीर्थ महाराज थे सम्पूर्णरूपसे व्यतिक्रमधर्मी। दूसरेकी उन्नति देखकर भी ईर्ष्या न रहनेके कारण वे उदार-स्वभावयुक्त थे। क्षमाशीलता, सहिष्णुता, धैर्य आदि विभिन्न गुणोंसे युक्त होनेके कारण वैष्णव-सज्जनगण उनके प्रति मुग्ध थे।

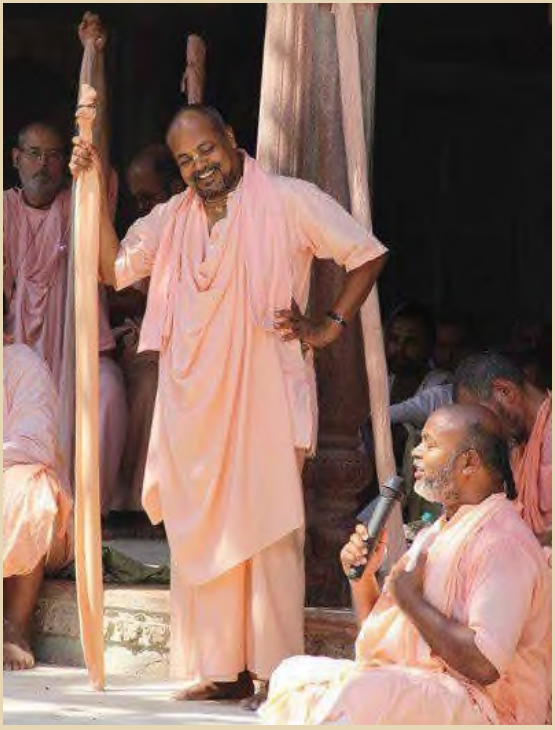

गौड़ीय तत्त्व एवं रस-विचारमें सुनिपुण रूपानुग-वैष्णव—

श्रीमद् तीर्थ महाराज किसी भी विद्वतसभामें अथवा वैष्णव-सम्मेलनमें गौड़ीय-सिद्धान्तों अर्थात् तत्त्व एवं रस-विचारको अति प्राञ्जल भाषामें प्रस्तुत करनेमें सुनिपुण थे। वे तत्त्व-विचार एवं रस-विचार विशेषतः उन्नत-उज्ज्वल विचारको, जो श्रील गुरुदेव एवं श्रील वामन गोस्वामी महाराजके हृदयमें था, अपनी कथामें सुन्दररूपसे विस्तारपूर्वक प्रकाशित करते थे। विशेषकर प्रस्थानत्रय अर्थात् न्याय प्रस्थान—वेदान्त-सूत्र, श्रुति प्रस्थान—श्रीमद्भागवतम् और उपनिषद् आदि तथा स्मृति प्रस्थान—श्रीमद्भगवतगीता एवं चतुर्थ प्रस्थान

अर्थात् गौड़ीय सम्प्रदायके रस ग्रन्थों—गीतगोविन्द, उज्ज्वलनीलमणि, गोविन्द-लीलामृत आदिकी विषय वस्तुमें उनका प्रवेश था। इन चारों प्रस्थानोंके विषयोंपर उनकी धाराप्रवाह युक्त वक्तृताको सुनकर बड़े-बड़े विद्वान एवं वैष्णवजन आश्चर्यचकित रह जाते थे। वे श्रीरूपानुग विचारधाराके धारक, वाहक, प्रचारक, व्रजरसिक एवं गौरगत प्राण थे।

सरलता एवं सहनशीलता—

पूज्यपाद तीर्थ महाराज अमानि-मानद धर्ममें प्रतिष्ठित वैष्णव थे। कोई उनको अपमानित करने

पर भी वे अतिशीघ्र ही सबकुछ भूल जाते और उस व्यक्तिको गले लगा लेते थे, मानो कुछ हुआ ही न हो। वे अदोषदर्शी, अजातशत्रु, सदा हास्यमुख और स्वभावसे बालकके समान सरल थे। आजके समयमें सांसारिक लोगोंमें तो क्या वैष्णव-समाजमें भी ऐसे सरल स्वभावका दर्शन दुर्लभ है।

उनके जीवनमें बहुतसे कष्ट-झंझट आये, जीवनमें उनको बहुत त्याग स्वीकार करना पड़ा, किन्तु इन बाधाओंसे वे अपने उद्देश्यके प्रति निरुत्साहित नहीं हुए—पथका त्याग नहीं किया, अपितु अधिकतर उत्साहके साथ वे अपनी सेवाओंका सम्पादन करते थे। वे निन्दाके भयसे सेवामें पीछे हटते नही थे। निन्दुक निन्दा करता, किन्तु वे सुनकर भी सुनते नहीं, देखकर भी देखते नही थे। अपनी सेवाओंमें ही मग्न रहते थे। उन्होनें अपने गुरु-दायित्वको इस जगत्से चले जाने तक निष्ठापूर्वक पालन किया है। वे अपनी सेवाओंके कारण नारदजी की भाँति कभी भी एक स्थानपर स्थित नहीं रह पाते थे।

समस्त परिस्थितियोंमें अविचलित—

एक बार श्रीव्रजमण्डल परिक्रमाके अन्तर्गत श्रीराधाकुण्ड परिक्रमाके समय जब परिक्रमा-पार्टी राधाकुण्डमें स्नानादिके उपरान्त निकट ही श्रीगिरिराज मन्दिरमें प्रसादसेवाके लिए उपस्थित हुई, तो वहाँ एक नागा बाबा प्रसाद पाने लिए यात्रियोंके बीच जाकर बैठ गया। उसके वहाँ बैठनेके कारण लज्जावशतः यात्रीगण अपने स्थानसे उठ-उठकर इधर-उधर जाने लगे। यह देखकर श्रीमद् तीर्थ महाराजने उस नागा बाबाको वहाँसे उठकर एक एकान्त स्थान पर जाकर बैठनेका निवेदन किया। वह बाबा वहाँसे उठना नही चाहता था। तीर्थ महाराजके द्वारा बार-बार अनुरोध करनेपर उस नागा बाबाने क्रुध होकर श्रीतीर्थ महाराजको थप्पड़ मार दिया। यह देखकर वहाँ उपस्थित सभी भक्त-ब्रह्मचारी-यात्री उस नागा बाबाको बुरा-भला कहते हुए उसे बलपूर्वक उठाकर मारनेको उद्यत हुए। किन्तु सैकड़ो लोगोंके समक्ष थप्पड़ खाने पर भी श्रीमद् तीर्थ महाराज विचलित नहीं हुए और बाहर धकेले जा रहे नागा बाबाका हाथ पकड़कर उसे एक एकान्त स्थानपर बैठाकर प्रसाद परिवेशन करवाया। इस घटनासे श्रीनित्यानन्द प्रभुके 'मार खेये प्रेम देय' चरित्रका स्मरण होता है। हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके उद्देश्यसे श्रीमद् तीर्थ महाराजका अभिमान रहित दैन्य एवं सहनशीलता ही उनकी प्रचार सफलतामें एक महान गुण था।

अन्य एक समय व्रजमण्डल-परिक्रमाके काम्यवन यात्राके अर्न्तगत विमलकुण्डपर प्रसादसेवाके समय पत्तल शेष हो गये और चेष्टा करनेपर भी आस-पासकी दुकानोंसे पत्तलकी व्यवस्था नहीं हो सकी, बाजार दूर था। लगभग २५ यात्रियोंने प्रसाद नहीं पाया था। श्रीमद् तीर्थ महाराजका स्वभाव था कि जबतक अन्तिम यात्री प्रसाद ग्रहण न कर ले, वे स्वयं प्रसाद ग्रहण नहीं करते थे। तब उन्होंने माइक पर कहा, "भगवान्ने हमें कर (हस्तरूपी) पात्र दिया है, आज हम उसीमें प्रसाद ग्रहण करेंगे।" तब स्वयं श्रीतीर्थ महाराज एवं सभी भक्तोंने करमें ही प्रसाद पाया। फिर सबको लेकर वे सबसे अन्तमें मठमें पहुँचे। यही श्रीतीर्थ महाराजके सुन्दर स्वभावका परिचय है—श्रीमद् तीर्थ महाराजकी तुलना तीर्थ महाराज स्वयं हैं और कोई हो नही सकता।

व्रजके प्रति अनुराग—

सन् २०१९ की श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमाके उपरान्त पूज्यपाद तीर्थ महाराज बङ्गाल प्रचारके लिए चले गये एवं चार मास बङ्गाल प्रचारके उपरान्त बहुत सुन्दररूपसे

हजारों भक्तोंके साथ श्रील गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकेके कृपा-आनुगत्यमें सन् २०२०की श्रीनवदीप-धाम-परिक्रमाके समापनके उपरान्त कोरोना लाकॅडाउनके चलते वे व्रजमें नहीं लौट सके, किन्तु उनका मन सर्वदा व्रजमें आनेके लिए आकुल रहता था। अपने अप्रकटसे एक दिन पूर्व कामिका एकादशीके दिन उन्होंने वृन्दावनमें किसी एक भक्तसे फोनपर वर्ष २०२०में श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमाके होनेकी सम्भावनाके विषयमें पूछा एवं अति दैन्यपूर्वक बालकके समान जिज्ञासा की, "क्या मेरा व्रजमें आगमन होगा? क्या मुझे व्रजमें स्थान मिलेगा?" यद्यपि उस समय तो उनके इस वचनका मर्म किसीको समझ नहीं आया, किन्तु अगले दिन ही उनके अन्दरकी भावना क्या थी स्पष्ट हो गया। पूज्यपाद महाराजकी गुरु-निष्ठा एवं व्रज-निष्ठा उनके जीवनका आदर्श था। कभी-कभी वे भावविभोर होकर गान करते थे—'हरि ब'लब आर मदनमोहन हेरिबो गो। एइ रूपेते व्रजरे पथे चलिब गो॥ एइ देह अन्तिमकाले, राखिब यमुनार जले, जय राधागोविन्द ब'ले, भासिब गो॥ कहे नरोत्तमदास, ना पूरिल अभिलाष, आर कबे व्रजेवास करिब गो॥

गुरु-वैष्णवोंकी सेवा-शिक्षाके आदर्श—

गुरु-निष्ठा, गुरुसेवा और वैष्णव-सेवा द्वारा सबको प्रसन्न करना ही एकमात्र पूज्यपाद तीर्थ महाराजके जीवनका व्रत-तपस्या और अध्यावसाय था। इसीकी सार्थकताको उन्होंने सभी मठवासियोंके जीवनके महान आदर्शके रूपमें स्थापित किया है।

श्रीमद् तीर्थ महाराज पुनः पुनः अपनी हरिकथाओंमे हरि-गुरु वैष्णवसेवाके ऊपर विशेष गुरुत्व देते थे। वे कहा करते थे कि गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके फलस्वरूप ही हृदय भगवत्-तत्त्वज्ञान—भगवत्-भक्तिको प्राप्त करनेकी योग्यता प्राप्त करता है, अतः प्राण देकर गुरु-वैष्णवोकी सेवा करो—उनकी सेवामें स्वयंको समर्पित कर दो। श्रीतीर्थ महाराज केवल मुखसे ही ऐसा नही कहते थे, अपितु उनके सेवामय जीवनमें यह विचार पूर्णता प्रतिफलित हुआ कि किस प्रकारसे उन्होंने प्राण देकर गुरु-वैष्णवोंकी सेवाकी, उनकी सेवामें अपनेको उत्सर्ग कर दिया।

पूज्यपाद तीर्थ महाराज अनेक बार मठके ब्रह्मचारियोंको वेदों (उपनिषदों) के आरण्यक-विभागकी कथाका उदाहरण देकर समझाया करते थे कि किस प्रकारसे पूर्वकालमें गुरुकुलमे आगत ब्रह्मचारिगण

ब्रह्मविद्याको प्राप्त करनेके योग्यता प्राप्त करते थे, अर्थात् गुरुसेवा करते थे। उसकालमें वनमें ऋषि-मुनि लोग प्रतिदिन यज्ञ किया करते थे और अपने आश्रितजनोंको यज्ञादि की शिक्षा देते थे। यज्ञके लिए उन्हें मुख्यतः शुद्ध घी की आवश्यकता होती थी और शुद्ध घी की प्राप्तिके लिए गोपालन आवश्यक होता था। इसलिए उस कालमें ऋषिगण गुरुकुलमें आनेवाले समस्त विद्यार्थी-ब्रह्मचारियोंको गोपालन अर्थात् गोवंशकी वृद्धिरूपी सेवामें नियुक्त करते हुए इस प्रकार निर्देश देते थे कि यह दो गाय ले जाओ और जब ये पचास हो जायँ तभी लौट कर आना। इस प्रकारसे ब्रह्मचारी दो गायोंको लेकर वन-वनमें विचरण करते हुए गुरु-आज्ञासे गोवंशका पालन-वर्धन और जङ्गली जानवरोंसे उनका रक्षण करनेके लिए अनेक कष्ट उठाते हुए सजग रहते थे। इस प्रकार अनेक वर्षों तक जब वे गोवंशकी वृद्धि करके गुरु आश्रममें लौटते थे, तो गुरु-आज्ञाके पालनवशतः प्राप्त गुरुकृपा एवं गोवंशकी सेवारूप तपस्याके फलसे उनका हृदय ब्रह्मविद्या अर्थात् भगवत्-तत्त्वज्ञान—भगवत्-भक्ति प्राप्त करनेकी योग्यता लाभ करता था।

इस कथाके माध्यमसे श्रीमद् तीर्थ महाराज मठवासी ब्रह्मचारियोंको किस प्रकारसे गुरु-वैष्णव सेवामें स्वयंको अर्पण करना है, उसका उदाहरण देते थे।

गुरु-दक्षिणामय जीवन—

श्रीमद् तीर्थ महाराजका सम्पूर्ण जीवन उपरोक्त सेवा-शिक्षाका आदर्श था कि किस प्रकार मठवासीका सम्पूर्ण जीवन उसका देह-मन-प्राण सर्वस्व ही गुरु-दक्षिणा स्वरूप है। श्रील गुरुदेवके अप्रकटके बाद दस वर्षों तक श्रीतीर्थ महाराजने श्रील गुरुदेवके मनोऽभीष्ट रूप प्रचारकार्य, वार्षिक श्रीनवदीप-धाम एवं श्रीव्रजमण्डल परिक्रमाओंका दायित्वपूर्ण सञ्चालन, ग्रन्थ-सेवा और श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, नवद्वीपके असम्पूर्ण कार्योंको बहुत अर्थ व्यय करके एक-एक करके सम्पूर्ण किया। अपने सम्पूर्ण जीवनको श्रील गुरुदेवकी सेवामें गुरु-दक्षिणा रूपमें नियोजित करते हुए श्रीतीर्थ महाराज अन्तमें अपने सेवा-सौष्ठवके द्वारा श्रील गुरुदेवके आह्वानसे उनके नित्य सान्निध्यमें श्रीगोवर्धन अभिन्न श्रीनवदीप (कोलद्वीप) स्थित श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्रील गुरुदेवके दक्षिण पार्श्वमें समाधिस्थ होकर साक्षात् नित्य गुरुसेवामें नियुक्त हुए हैं। श्रील गुरुदेवने उन्हें सबसे पहले अपनी साक्षात् सेवामें नियुक्त कर लिया है। श्रील गुरुदेवके जानेके दस वर्षके भीतर ही वे चले जायेंगे हम लोगों ने कदापि ऐसा सोचा नहीं था, उनकी आयु भी अभी अधिक नहीं थी। वे श्रील गुरुदेवके दक्षिण हस्त (Right Hand) स्वरूप थे और इसी कारण उनके अप्रकटके उपरान्त भी श्रील गुरुदेवने उन्हें अपने दक्षिण पार्श्व (Right Side) में नित्यकालके लिए अपनी नित्यसेवामें स्थान दिया।

निःस्वार्थ पारमार्थिक मङ्गलकारी—

पूज्यपाद तीर्थ महाराजके प्रयाणसे समस्त वैष्णव जगत एक रत्न शून्य हुआ है। यह क्षति हम सबके लिए एक अपूरणीय क्षति है। दाँत रहते हुए दाँतोंकी महिमा समझ नहीं आती। जिस प्रकार एक मोमबत्ती स्वयं जलकर अपनी सत्ताको क्षीण करते हुए दूसरोंको प्रकाश दान करती है, जिस प्रकार एक वृक्ष सब समय सर्दी-गर्मीका कष्ट सहनकर अपना सबकुछ—लकड़ी-फल-फूल आदि दूसरोंको देता है, उसी प्रकारसे ही श्रीमद् तीर्थ महाराजका जीवन निःस्वार्थ सेवाके लिए रहा—उन्होंने अपना सर्वस्व देह-मन-प्राण-धन दूसरोंके पारमार्थिक मङ्गलके लिए नियोजित किया। वे निजगुणोंसे हमारी भूल-त्रुटियोंको, अपराधोंको क्षमा करें।

गुरुप्रेष्ठके प्रेरणामय दर्शनसे वञ्चित—

श्रीमद् तीर्थ महाराज अपने समकालीन गुरुभ्राताओंमें अग्रगणी थे। वे २४ घण्टे ऊर्जासे ओत-प्रोत रहते थे, विश्राम क्या होता है, उनके जीवनमें कदापि प्रतिफलित नहीं हुआ। उनके द्वारा की जानेवाली बहुविध सेवाओंमें-से हम किसी एक सेवामें भी उनके समान नही हो सकते हैं, किन्तु तथापि जिस प्रकार चींटी मणिमय भवनमें छिद्र ढूढ़ती है, उस प्रकार हम बद्धजीव भी दोष-दृष्टि युक्त विकृतिसे ग्रसित हैं। एक ही व्यक्तिमें अनेकानेक गुण एक साथ विराजित होना दुर्लभ होता है, अतएव ऐसे अनेकानेक सेवामय गुणोंसे युक्त श्रीमद् तीर्थ महाराजकी अनुपस्थितिमें हम एक गुरुप्रेष्ठ सेवकके प्रेरणामय दर्शनसे वञ्चित हुए हैं।

वे जितने दिन भी हमारे साथ थे, हमें कभी निसङ्गताका अनुभव नहीं हुआ। श्रील गुरुदेवके अप्रकटके उपरान्त वे एक ज्येष्ठ भ्राताकी भाँति आश्रय स्वरूप थे। श्रीमद् तीर्थ महाराज निश्चित रूपमें नित्य-गुरुसेवामें नियुक्त हुए हैं। किन्तु उनके जानेसे जो शून्यस्थान हुआ है, उसे आनेवाले दिनोंमें कोई पूर्ण कर पायेगा या नहीं—यह हम नही जानते।

वैष्णवोंकी विरहवार्ता विशेष सहायक—

आज तक हमने गुरुवर्गका विरह-महोत्सव पालन किया, हमारा दुर्भाग्य है कि अब ऐसा दिन आ गया है कि हमें गुरुभ्राताका विरह-महोत्सव पालन करना पड़ रहा है—

कृपा करि' कृष्ण मोरे दियाछिला सङ्ग।
स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा,—कैला सङ्गभङ्ग॥

(चै.च.अन्त्य ११/९४)

श्रीनामभजन-परायण आचारवान् भक्तोंके प्रपञ्चसे विदायी ग्रहणपूर्वक साधनोचित धाममें जानेको वैष्णव-दार्शनिक जगतमें 'विच्छेद या विरह-दशा' के नामसे जाना जाता है। वैष्णव-विच्छेद ही हमारे लिए सबसे अधिक दुःख-जनक है। उनकी बातोंको स्मरण करनेपर हृदय व्यथित हो जाता है तथा स्वयंको शुद्धभक्त-सङ्गरहित तथा असहाय बोध होता है। ऐसे वैष्णवोंके अभावमें जो दुःख प्रकाश किया जाता है, वह साधारण शोक नहीं होता, क्योंकि वे श्रीगुरु-गौराङ्गके प्रियपात्र होते हैं, उनके साथमें हम भक्ति-अनुष्ठानमें अत्यन्त उत्साह-उद्दीपना प्राप्त करते हैं। हमारे जैसे भगवत्-सेवा-विमुख लोगोंके लाभ-पूजा-प्रतिष्ठाशा, अन्याभिलाषिता आदिको हृदयसे बाहर निकालनेके लिए वैष्णवोंकी विरहवार्ता विशेष सहायक है। उनकी साधन-भजन-परिपाटी, प्रचार-वैशिष्ट्य आदिकी चर्चाके द्वारा साधन-भजनमें उन्नति प्राप्ति ही शिक्षाका विषय है। उनका सेवा-सौन्दर्य, सेवाप्राणता, सेवादर्शका अनुगमन कर पानेपर हृदयमें सेवाप्रवृत्तिके उदय होनेपर अधिक परिमाणमें भगवान्की सेवामें उन्नति और उत्साह प्राप्त होता है।

विरहोत्सव—

श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ (नवद्वीप), श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ (मथुरा), श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ (वृन्दावन), श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठ (दिल्ली) एवं Zoom के माध्यमसे श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजके उद्देश्यसे विरहोत्सव अनुष्ठित हुए, जिनमें विश्वभरके भक्तों—गुरु-भ्राता और गुरु-बहनों द्वारा पूज्यपाद तीर्थ महाराजकी श्रीगुरु-वैष्णव-निष्ठा, उनके सेवामय जीवनचरित्र तथा गुणावलीका कीर्तन-स्मरण एवं उनके सम्बन्धमें स्व-स्व अनुभवोंको व्यक्त किया गया।

पूज्यपाद तीर्थ महाराजका स्वभाव-सुलभ दैन्य, अमायिक उदारता, सरलता, सेवा-परायणता, कर्तव्यनिष्ठा, दायित्वशीलता एवं उससे भी ऊपर श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमधर्मके प्रचारमें उनकी प्रगाढ़ निष्ठा सभीको मुग्ध कर देती थी। क्या हम पुनः उनका दर्शन कर पाएँगे? वे हमपर आशीर्वाद-वर्षण करें, जिससे कि हम भी उनके श्रीहरि-गुरु-वैष्णवसेवाके ज्वलन्त आदर्शका अनुसरणपूर्वक उनके सेवादर्शसे अनुप्राणित होकर भजनमार्गमें अग्रसर हो सकें।

श्रील गुरुदेवके प्रिय पार्षदोंमेंसे एक, श्रील गुरुदेवके मिशनके एक स्तम्भ, सेनापति इस जगत्से प्रयाण किए हैं। अत्यन्त दुःखित एवं अभागे हम लोगोंने एक अकल्पनीय दयावान् गुरुभ्राताको खो दिया है। उनके मन्त्रमुग्ध करनेवाले अतुलनीय व्यक्तित्व एवं श्रील गुरुदेवके मिशनके प्रति समर्पणके लिए हम उन्हें सर्वदा विशेष प्रीति-स्नेह एवं सम्मानसे स्मरण करेंगे। पूज्यपाद महाराज! आपके चले जानेसे जो स्थान रिक्त हुआ है, उसकी पूर्ति सम्भव नही है। विद्वता और रसिकताके मिश्रण—रूपानुग वैष्णव—आप जिस रूपमें भी प्रसन्नतापूर्वक हमें आशीर्वाद देना चाहें, उस प्रकारसे प्रसन्न रहें।

पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजकी जय!

विरह-संतप्त सतीर्थगण (गुरु-भ्राता और गुरु-बहन)

श्रीपाद कृष्णदास प्रभुकी स्मृतिमें

अत्यन्त दुःखके साथ अवगत कराया जा रहा है कि गत १५ सितम्बर, २०२०, मङ्गलवार कृष्ण-चतुर्दशी रात्रि ११:४० बजे हमारे सुपरिचित, सरल-स्निग्ध, अपने सुमधुर कीर्तनोंके माध्यमसे श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंके सेवा-परायण श्रीपाद कृष्णदास प्रभु हम लोगोंको अन्तर-वेदनाके अनुभवमें निमग्नकर अपने साधनोचित धाममें गमन किये हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा उपदिष्ट कीर्तन-पद्धति 'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः' में निष्णात गुरुद्वय नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज एवं नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी सङ्कीर्तन-सेवाके बृहत्-यज्ञमें उन्हींके अनेक चरणाश्रितजनोंने विभिन्न प्रकारकी सेवाओं द्वारा योगदान दिया है। इन सेवकोंकी शृङ्खलामें श्रीपाद कृष्णदास प्रभुकी कीर्तन-सेवा अतुलनीय रही है।

श्रीकृष्णदास प्रभुका जन्म सन् १९६८ ई. में कार्तिक मासकी एकादशीके दिन उनके ननिहाल आसाम प्रदेशके गोयालपाड़ा ज़िलेके अन्तर्गत डूबपाड़ा मोनाई नामक गाँवमें हुआ था। इनके पिताका नाम श्रीयतीन्द्र नाथ भौमिक और माताका नाम श्रीमती बासन्ती देवी था। इनका पितृदत्त नाम कृष्णपद भौमिक था। कुछ दिन बाद ये अपने पिताजीके घर गाँव गङ्गालेर कुठि, घेधीर घाट, जिला कूचबिहारमें आ गये। इनके पिताजी कीर्तनीया थे, अतएव ये भी बचपनसे ही अपने पिताजीके साथ कीर्तन करना सीख गए थे। इनका कण्ठ भी सुमधुर था।

अपने पूर्वाश्रममें घुघुमारी हाईस्कूलमें पढ़ते समय शुद्ध-वैष्णवोंका सङ्ग पानेके लिये आतुर होकर ये सन् १९८०ई. के कार्तिक महीनेमें १२ वर्ष की आयुमें असीम प्रभुके साथ श्रीनवद्वीप-धामके अन्तर्गत श्रीदेवानन्द गौडीय मठमें आ गये। वहाँ आकर इन्होंने अपनेको श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीके श्रीचरणकमलोंमें आत्म-समर्पित कर दिया और कुछ दिनों बाद ही उनसे हरिनाम-दीक्षारूपी कृपाको प्राप्त किया। हरिनाम एवं दीक्षा लेनेके एक वर्ष बाद ये श्रील गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके आनुगत्यमें शिक्षा ग्रहण करनेके उद्देश्यसे उनके साथमें मथुरा स्थित श्रीकेशवजी गौडीय मठमें आ गये।

श्रील गुरुदेवने उन्हें विद्या अर्जन हेतु मथुराकी डेम्पियर नगर पाठशालामें भर्त्ती करवाया और वहाँ पर इन्होंने कुछ दिन पढ़ाई भी की। मठके सेवाकार्योंके कारण स्कूल पहुँचनेमें देरी हो जानेपर अध्यापकोंसे पिटाई खानेके डरसे ये मथुराकी परिक्रमा करके मठमें वापस आ जाते। एक बार जब श्रील गुरुदेवके पास अध्यापकोंसे शिकायत आयी कि कृष्णदास नियमित रूपसे स्कूल नहीं जाता है, तब श्रील गुरुदेवने इनको बुलाया और पूछा कि तुम स्कूल क्यों नहीं जाते हो? इन्होंने कहा कि मुझको सेवा करते-करते देर हो जाती है, अतः कभी-कभी समयसे स्कूल नहीं जा पाता और वहाँ पिटाई लगनेके डरसे मथुरा-परिक्रमा करके वापिस आ जाता हूँ। इस बातको सुनकर श्रील गुरुदेव बहुत प्रसन्न हुए और इनको आशीर्वाद दिया।

श्रील गुरुदेवने उन्हें गौड़ीय-पद्धतिके अनुसार कीर्तन करना सिखाया, जिसे अभ्यास करते-करते वे अति सुन्दर रूपसे कीर्तन करने लगे। श्रील गुरुदेवके आनुगत्यमें वे मथुराके घर-घरमें प्रचार हेतु जाते थे। यदि मठमें कोई नया ब्रह्मचारी आता तो श्रील गुरुदेव उसे कीर्तन और मृदङ्ग सीखनेके लिये कृष्णदास प्रभुके पास भेज देते। कुछ बड़े होने पर ये श्रीमद् भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजके साथ बङ्गाल-प्रचारमें जाने लगे। श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमा एवं श्रीब्रजमण्डल-परिक्रमाके समय वे अपने सुमधुर कीर्तनों द्वारा हजारोंकी संख्यामें एकत्रित श्रद्धालुओंका मन मुग्ध कर देते थे। कभी-कभी देखा जाता था कि वे अपने कीर्तनके द्वारा श्रील गुरुदेवके हृदयके भावोंका वर्धन करते थे, तब श्रील गुरुदेव उनको अपनी आशीर्वाद रूपी माला प्रदान करते थे। प्रतिवर्ष श्रीगौर-जन्मोत्सवके समय श्रील गुरुदेव श्रीकृष्णदास प्रभुसे ही 'नदीया उदयगीरि' कीर्तन करवाते थे और उस समय वे अपने सुमधुर गानसे उपस्थित सभीको अपूर्व आनन्दकी तरङ्गोंमें निमज्जित कर देते थे। जन्माष्टमीके अवसर पर श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें ब्रजके प्रसिद्ध कीर्तनीयों एवं गायकोंके मध्य श्रील गुरुदेव श्रीकृष्णदास प्रभुके द्वारा गौड़ीय-पद्धतिसे कीर्तन करवाकर सबको आनन्दोत्सवमें निमग्न कर देते थे।

श्रील गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीका श्रीकृष्णदास प्रभुके प्रति कितना आत्मीय स्नेह था, यह निम्नोक्त वृत्तान्तसे स्पष्ट प्रकाशित होता है जिसका वर्णन कृष्णदास प्रभु अति प्रफुल्लित मनसे प्रायः किया करते थे। यह घटना उनके मठवासके प्रारम्भिक दिनों की है, जब वे एक छोटे बालक थे। श्रील गुरुदेवका सामान्य परिस्थितिमें सभी मठवासियोंके लिये मङ्गल-आरतीमें प्रस्तुत रहनेका स्पष्ट निर्देश था। वे स्वयं यह ध्यान रखते थे कि कौन-कौन मङ्गल-आरतीमें आया है। शीतऋतुके समय एक दिन जब श्रील गुरुदेवने देखा कि बालक कृष्णदास मङ्गल-आरतीमें उपस्थित नहीं है और अभी तक बिस्तरमें विश्राम कर रहा है, तो आरतीके उपरान्त वे उसके कक्षमें पहुँचे तथा सोते हुए कृष्णदासको उठाने हेतु अपने पाँवसे ही रजाईको थोड़ा बलपूर्वक दबाया। कृष्णदास घबराकर उठे और श्रील गुरुदेवके क्रोधसे अपनी रक्षा करनेके

लिये उनसे क्षमा याचना करने लगे। उन्होंने पुनः ऐसी भूल नहीं करनेका मन-ही-मन सङ्कल्प किया। अगले दिन सुबह कृष्णदास समयसे उठ गये तथा स्नान, तिलक आदि करके मङ्गल-आरती दर्शन करनेके लिये प्रस्तुत हुए, परन्तु मङ्गल-आरतीके समय जान-बूझकर ऐसे स्थानपर पीछे खड़े रहे कि श्रील गुरुदेव उन्हें देख न पायें। उन्होंने उस दिन पहलेसे ही अपने बिस्तरपर रजाईको ही इस प्रकारसे बिछा दिया था कि दूरसे देखकर लगे मानो कोई सो रहा है। श्रील गुरुदेव मङ्गल-आरतीमें आज भी कृष्णदासको नहीं देखकर जब थोड़ा क्रोधपूर्वक उनके कक्षमें आये तो देखा कि बिस्तर पर रजाई ओढ़कर कोई सोया है। आज उन्होंने अपने पाँवसे रजाईको थोड़ा अधिक जोरसे धकेला तो रजाई भीतरकी ओर दब गई और बिस्तरमें किसीको भी न देखकर श्रील गुरुदेव थोड़ा स्तब्ध हो गये। तभी पीछे छिपकर यह सब देख रहे बालक कृष्णदासने जोरसे कहना आरम्भ कर दिया, "मिला! मिला!" श्रील गुरुदेव भी बालक कृष्णदासकी इस मधुर शरारतपर अपनी हँसी रोक नहीं सके और उसपर अपना भरपूर स्नेह वर्षण किया। इस प्रकार श्रील गुरुदेव अपने आश्रित सभी बालकोंपर माता-पितासे भी अधिक स्नेह द्वारा एवं सद्गुरुके रूपमें पारमार्थिक शिक्षाओं एवं शासन द्वारा सदैव उनका पालन-पोषण किया करते थे। श्रीकृष्णदास प्रभुने भी सहर्ष श्रील गुरुदेवका शासन स्वीकार किया जिसके फलस्वरूप वे जीवन पर्यन्त हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवामें स्वयंको नियुक्त रख सके।

श्रीकृष्णदास प्रभु अति मधुर स्वभावयुक्त थे तथा किसीके भी साथ वृथा वाद-विवादमें नहीं पड़ते थे। वे रसोई बनानेमें भी सुनिपुण थे तथा आवश्यकता होने पर बहुत ही रुचिके साथ श्रील गुरुदेव एवं वैष्णवोंके लिये अति सुस्वादु व्यञ्जन प्रस्तुत करनेकी सेवामें नियुक्त होते थे।

श्रीकृष्णदास प्रभु प्रातःकाल मङ्गल-आरती दर्शन और उसमें कीर्तन करनेके लिये उत्साहित रहते और कभी-कभी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी शिक्षाओंको और उनके उपदेशोंको भक्तोंको सुनाते। उनके ऐसे स्वभावको देखकर सन् १९९६ से श्रील गुरुदेव उनको अपने साथ विदेश प्रचारमें भी ले जाने लगे और वहाँ वे अति उत्साहपूर्वक मृदङ्ग बजाना, कीर्तन करना आदि सभी सेवाओंको प्रीतिपूर्वक करते थे। उन्हींके भजनों और कीर्तनोंको सुनकर देश-विदेशके अनेक भक्त गौड़ीय पद्धतिसे कीर्तन करना सीख गये। श्रील गुरुदेवके नित्यलीलामें प्रविष्ट होनेके उपरान्त श्रीकृष्णदास प्रभु श्रीमद् भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज, श्रीपाद भक्तिवेदान्त श्रीधर महाराज एवं श्रीपाद भक्तिवेदान्त सिद्धान्ती महाराजके साथ भागवत कथाओंमें अपनी कीर्तन रूपी सेवा प्रदान करते थे। उनके कीर्तनको सुनकर साधारण लोग भी आनन्दमें नृत्य करने लगते थे।

श्रीपाद कृष्णदास प्रभु अपनी हरिनाम संख्याको ठीक रूपसे करते हुए सबको हरिनाम सङ्कीर्त्तन करनेकी शिक्षा प्रदान करते। गृहस्थ आश्रममें प्रवेश करने पर भी उन्होंने अपनी कीर्त्तनरूपी सेवाका नैरन्तर्य बनाये रखा। उनके हठात् अस्वस्थ होनेका संवाद मिलनेपर देश-विदेशके सभी भक्त चिन्तित हो गये तथा उनकी चिकित्सा हेतु सभीने बहुत सहयोग किया। कम आयुमें उनके इस जगत्से चले जानेपर अनेक भक्तोंको अन्तर-वेदनाका अनुभव हुआ। श्रीधाम वृन्दावन, मथुरा एवं गोवर्धनमठके भक्तोंकी उपस्थितिमें उनका अन्तिम संस्कार श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठके निकट श्रीगोवर्धनके चरणप्रान्तमें सम्पादित हुआ। उनके उद्देश्यसे श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, वृन्दावनमें वैष्णव-सेवाका भी आयोजन किया गया। निश्चित रूपसे श्रील गुरुदेवने उनको अपनी सेवामें किसी अन्य स्थान पर नियुक्त किया है।

–(विरही गुरु-भ्राता एवं गुरु बहन)

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके

द्वारा स्वयं एवं उनके कृपाशीर्वाद और प्रेरणासे

भारतमें प्रतिष्ठित शुद्धभक्ति प्रचार-केन्द्र

१. **श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**, जवाहर हाट, मथुरा, (उ॰प्र॰)	☎ ९७१९०७०९३९
२. **श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ**, दानगली, वृन्दावन, (उ॰प्र॰)	☎ ९२१९४७८००१
३. **श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**, कोलेरडाङ्गा लेन, नवद्वीप, नदीया, (प.बं.)	☎ ९३३३२२२७७५
४. **श्रीदुर्वासा-ऋषि गौड़ीय आश्रम**, ईशापुर, मथुरा, (उ॰प्र॰)	☎ ९९१७६४३९७१
५. **श्रीगोपीनाथ-भवन**, इमली-तला, परिक्रमा-मार्ग, वृन्दावन, (उ॰प्र॰)	☎ ९६३४५६३७३९
६. **श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ**, दसविसा, राधाकुण्ड रोड़, गोवर्धन, (उ॰प्र॰)	☎ (०५६५)२८१५६६८
७. **श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ**, बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली	☎ (०११)२५५३३२६८
८. **श्रीवामन गोस्वामी गौड़ीय मठ**, ३९ रामानन्द चटर्जी स्ट्रीट, कोलकाता (प.बं.)	☎ ९४३३२०३७१८
९. **श्रीरङ्गनाथ गौड़ीय मठ**, बेङ्गलुरु, कर्नाटक	☎ (०८०)२८४६६७६०
१०. **जयश्रीदामोदर गौड़ीय मठ**, चक्रतीर्थ, पुरी, उड़ीसा	☎ ९७७६२३८३२८
११. **श्रीराधे-कुञ्ज**, आनन्द-वाटिकाके समीप, परिक्रमा मार्ग, वृन्दावन, (उ॰प्र॰)	☎ ९४५७२२५५६७
१२. **श्रीराधागोविन्द गौड़ीय मठ**, डी-५, सेक्टर-५५, नोएडा (उ॰प्र॰)	☎ (०१२०)२५८२०१८
१३. **श्रीश्रीगोविन्दजी गौड़ीय मठ**, रूपनगर एन् क्लेव, जम्मू	☎ ९९०६९०४८०९
१४. **श्रीराधामाधवजी गौडीय मठ**, माधवी कुञ्ज, भूपतवाला, हरिद्वार	☎ (०१३३४)२६०८४५
१५. **आनन्द धाम गौड़ीय आश्रम**, परिक्रमा मार्ग, रमणरेती, वृन्दावन, (उ॰प्र॰)	☎ (०५६५)२५४०८४९
१६. **श्रीनारायण गोस्वामी गौड़ीय मठ**, ३१/२८ दीनबन्धु मित्रा सरणी, सुभाषपल्ली, सिलीगुड़ी (प.बं.)	☎ ८६२९९११४००
१७. **श्रीश्रीराधामाधव गौड़ीय मठ**, १६२, सैक्टर-१६-ए, फरीदाबाद, हरियाणा	☎ ९९११२८३८६९
१८. **श्रीगोविन्द गौड़ीय मठ**, बेङ्गलुरु, कर्नाटक	☎ ९९००१९२७३८
१९. **श्रीराधागोविन्द गौड़ीय मठ**, बड़ौत (उ॰प्र॰)	☎ ७०३७९१९९४९
२०. **श्रीकुञ्जविहारी गौड़ीय मठ**, अम्बाला (हरियाणा)	☎ ९७२९३८४९९५
२१. **श्रीराधाविनोदविहारी गौड़ीय मठ**, नोएडा (उ॰प्र॰)	☎ ९६५०८२४४४२
२२. Pure Bhakti Center, जयपुर (राजस्थान)	☎ ७२२९८८२२२८

RNI NO. - UPHIN/2004/13352
POSTAL REGN NO. - MATHURA - 013/2019-2021
DATE OF PUBLICATION - 20 JULY 2021

पारमार्थिक सचित्र रंगीन हिन्दी मासिक पत्रिका
श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाके सदस्य बनें

एक वर्षीय (1 yr) –	300 रु॰
पञ्च वर्षीय (5 yr) –	1,200 रु॰
आजीवन (Lifetime) –	7,500 रु॰ [750 रु॰ के भक्तिग्रन्थ उपहार]
संरक्षक (Patron) –	10,000 रु॰ [1000 रु॰ के भक्तिग्रन्थ उपहार]

सदस्यता भुगतानके लिए

(१) **Bank to bank NEFT transfer**

Account name:	SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA
Account no. :	037201000010611
IFSC code:	IOBA0000372
Bank:	Indian Overseas bank

(To help us update your subscription records after the bank deposit or transfer, immediately send an SMS to 7742440443 with your name, amount deposited and date of deposit.)

(२) **Demand draft or Cheque** (account payee) payable to: "SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA" पत्रिका कार्यालयके पते पर Demand draft or Cheque भेजें।

(३) **Money order** निम्न पते पर भेजें।
श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, १९४ सेवा-कुञ्ज, वृन्दावन(उ.प्र.)-२८११२१

सम्पर्क सूत्र

श्रीश्रीभागवत-पत्रिका कार्यालय
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा-२८१००१ (उ.प्र.)

श्रीश्रीभागवत पत्रिकामें प्रकाशित प्रबन्ध-समूह एवं विषय-वस्तुसे सम्बन्धित जानकारीके लिए सम्पर्क करें –
e-mail: gokulchandradas@gmail.com
phone: 9897140412

श्रीश्रीभागवत पत्रिकाकी सदस्यता-शुल्कके भुगतान एवं नवीन सदस्यता ग्रहण करनेके लिए सम्पर्क करें –
e-mail: bhagavata.patrika@gmail.com
phone: 9810654916; 8368371929